RNI No. 7127/60 डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2020-22

संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 57 अंक : 11 प्रकाशन तिथि : 25 अक्टूबर कुल पृष्ठ : 36 प्रेषण तिथि : 4 नवम्बर, 2020

शुल्क एक प्रति : 15/- वार्षिक : 150/- रुपये पंचवर्षीय 700/- रुपये दस वर्षीय 1300/- रुपये

त्याग तपस्या की पूजा ले, प्रेममयी कुछ मादकता ले।
एक दीप से जले दूसरा, वह त्योहार मनाएं।।

हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएँ

श्री क्षत्रिय युवक संघ के
स्वयंसेवक एवं हमारे सहयोगी

श्री भवानीसिंह मुंगेरिया

के पुलिस निरीक्षक से

पुलिस उपाधीक्षक

के रूप में पदोन्नत होने पर
हार्दिक बधाई एवं
उज्ज्वल भविष्य की शुभकामनाएं।

-: शुभेच्छु :-

रणजीत सिंह आलासण (मुम्बई)	देवीसिंह झलोडा (मुम्बई)	रणजीत सिंह चौक (पुणे)	मिठू सिंह सिवाना (पुणे)
पाबूदान सिंह दौलतपुरा (मुम्बई)	भाखरसिंह आशापुरा (मुम्बई)	नाथूसिंह काठाडी (मुम्बई)	ईश्वर सिंह जागसा (मुम्बई)
वागसिंह लोहिड़ी (मुम्बई)	रामसिंह सोमेसरा (वापी)	पवनसिंह बिखरणीया (पुणे)	श्रवणसिंह सिवाना (पुणे)
नीर सिंह सिंघाना (मुम्बई)	नेपालसिंह गोला (मुम्बई)	शंभुसिंह सिवाना (पुणे)	रघुनाथ सिंह बैनियाकाबास (पुणे)
तेजपालसिंह जाखड़ी (मुम्बई)	कुलदीपसिंह सिंघाना (मुम्बई)	प्रेमसिंह दूधवा (मुम्बई)	समुन्द्रसिंह चांदेसरा (पुणे)

संघशक्ति

4 नवम्बर, 2020

वर्ष : 56 अंक : 11

-: सम्पादक :-

लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास

शुल्क - एक प्रति : 15/- रुपये, वार्षिक : 150/- रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये, दस वर्षीय : 1300/- रुपये

विषय - सूची

☞ समाचार संक्षेप	✍	04
☞ चलता रहे मेरा संघ	✍ श्री भगवानसिंह रोलसाहबसर	05
☞ पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)	✍ श्री चैनसिंह बैठवास	06
☞ मेरी साधना	✍ प्रो. रूपसिंह लिम्बड़ी	08
☞ महान् क्रान्तिकारी-राव गोपालसिंह-खरवा	✍ डॉ. भंवरसिंह भगवानपुरा	14
☞ भारतीय संस्कृति के प्राण मर्यादा पुरुषोत्तम....	✍ स्वामी धर्मबन्धु	17
☞ दीपावली	✍ श्री धर्मवीर	23
☞ विचार-क्रान्ति	✍ श्री गजेन्द्रसिंह आऊ	24
☞ दृश्य, दर्शक, द्रष्टा	✍ श्री महिपालसिंह चूली	25
☞ विचार-सरिता (नव पञ्चाशत् लहरी)	✍ श्री विचारक	26
☞ कुए	✍ संकलित	28
☞ चित्रकथा-'लोकदेवता बाबा रामदेव जी'	✍ श्री ब्रजराजसिंह खरेड़ा	30
☞ पति का पत्नी के नाम पत्र	✍ एक पति	32
☞ अपनी बात	✍	34

समाचार संक्षेप

जन्म शताब्दी वर्ष :

17 अक्टूबर, 2019 से 17 अक्टूबर, 2020 तक श्री क्षत्रिय युवक संघ के द्वितीय संघ प्रमुख पू. आयुवानसिंह जी का जन्मशताब्दी वर्ष मनाया गया। पू. आयुवानसिंहजी का जन्म चाहे एक साधारण परिवार में हुआ हो, उनमें बौद्धिक प्रतिभा असाधारण थी। साधारणता से असाधारणता की यात्रा साधना है, तप है और तप से जीवन निखरता है। ऐसा व्यक्तित्व देह से चाहे संसार में न रहे, उनकी कृति सदैव बनी रहती है और साधकों को प्रेरणा देती रहती है। संघ के प्रत्येक दिवंगत स्वयंसेवक का योगदान सदैव स्मरणीय रहेगा परन्तु संघप्रमुख के रूप में जिन्होंने मार्गदर्शन किया उनकी स्मृति तो चिर-प्रेरणादायी बनी रहेगी।

इस वर्ष में विभिन्न कार्यक्रम भिन्न परिस्थितियों में सम्पन्न होते रहे। लोक डाउन के पहले मैदानी कार्यक्रम हुए और बाद में बदली हुई परिस्थितियों में वर्चुअल कार्यक्रम होते रहे।

पू. आयुवानसिंह जी बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे। साहित्य में उनकी जो भी रचनाएँ हैं वे ऐसी जीवन्त कृतियाँ हैं जो सदैव जीवन्त और प्रेरणादायी बनी रहेगी। उन रचनाओं का उद्देश्य मात्र साहित्य रचना नहीं था परन्तु समाज के लिए, प्रेरणादायी साहित्य सृजन करना था। हर प्रकार की भावनाएँ उभारने मात्र से लाभ नहीं होता दायित्व उभारना, कर्तव्यनिहित भावनाएँ अंकुरित करना, एक विशिष्ट शैली है और उनका साहित्य अपने इस उद्देश्य के सर्वथा अनुकूल है।

पू. आयुवानसिंहजी के जन्मशताब्दी वर्ष के कार्यक्रमों के समापन अवसर पर एक सात दिवसीय कार्यक्रम का आयोजन भी वर्चुअल रूप से किया गया। इन कार्यक्रमों में पूज्य श्री के जीवन के विभिन्न आयामों पर जानकारी दी गई। उनके साहित्य की चर्चा तो संघ के दैनिक व शिविर कार्यक्रमों में होती रहती है, पर उनके जीवन की अन्य गतिविधियों के बारे में नये स्वयंसेवक भी अधिक जानकारी नहीं रखते और समाज की नई पीढ़ी भी उनके समाज-हित योगदान के बारे में नहीं जानती अथवा बहुत कम जानती है।

सात दिवसीय कार्यक्रम में संघ में आयुवानसिंहजी विषय पर कार्यक्रम रहा। उनके सामाजिक भाव ने कैसे पू. तनसिंहजी से सम्पर्क की राह बनाई, कैसे उनकी नजदीकियाँ बढी। संघ के चौथे शिविर से इस वर्तमान प्रणाली में वे जुड़े और बौद्धिक क्षमता से संघ की विचारधारा को न केवल तुरन्त समझा, उसे समृद्ध बनाने में योगदान दिया। उनकी प्रतिभा से उन्हें संघप्रमुख का दायित्व निभाने का कार्य मिला।

समाज में भूस्वामी आन्दोलन हुआ। जागीर उन्मूलन कानून के कारण समाज के लोग भूमिहीन हो गए। दो अहिंसात्मक आन्दोलन के फलस्वरूप प्रधानमंत्री पं. नेहरू को फैसले के लिए बीच में आना पड़ा। उसी का परिणाम है कि नहरी क्षेत्र में अनेक समाज बन्धु आज जमीन के मालिक हैं, खेती कर परिवार पाल रहे हैं। ऐसा आन्दोलन था जिसमें राजस्थान की जेलें भर गई थी। इस आन्दोलन के प्रणेता पू. आयुवानसिंहजी ही थे।

'मेरी साधना' साधकों की राह का निर्देशन करती है। उसमें क्या कहा गया है, वह भी कार्यक्रम के माध्यम से बताया गया। उनके साहित्य पर एक अलग से कार्यक्रम रखा गया। पू. आयुवानसिंहजी के राजनैतिक विचारों पर अलग कार्यक्रम हुआ। श्री क्षत्रिय युवक संघ का गुजरात में प्रवेश और गुजरात के लिए पूज्यश्री की देन पर कार्यक्रम हुआ। अन्त में 17 अक्टूबर, उनके जन्मदिन पर संघप्रमुख माननीय भगवानसिंहजी का उद्‌बोधन सुनने का भी अवसर मिला।

संघप्रमुखश्री का प्रवास – लम्बे समय तक आलोक आश्रम बाड़मेर में प्रवास के पश्चात-संघप्रमुखश्री जोधपुर आए। स्व. जसवंतसिंहजी जसोल के यहाँ अपनी संवेदना प्रकट करने गये। स्वामी अड़गड़ानन्दजी फरीदाबाद आए हुए थे, वहाँ जाने की स्वीकृति का संदेश मिला तो फरीदाबाद पहुँचे। एक दिन जलशक्ति मंत्री गजेन्द्रसिंह महरोली भी महाराज के यहाँ पहुँचे। फरीदाबाद से जयपुर आगमन हुआ जहाँ लम्बे समय से आने के कारण, मिलने वाले आते रहे।

चलता रहे मेरा संघ

{माध्यमिक प्रशिक्षण शिविर मोदरान (जालोर) में 30 दिसम्बर, 2000 को संघप्रमुख माननीय श्री भगवानसिंहजी द्वारा उद्बोधित विदाई संदेश का संक्षेप।}

श्री क्षत्रिय युवक संघ का यह सात दिन का प्रशिक्षण शिविर आज सम्पन्न हो रहा है। जो शिक्षण दिया गया, उसको आपने जिस तन्मयता के साथ, जिस मनोयोग के साथ ग्रहण किया, वही इस विदाई के क्षण में आप लेकर जायेंगे। क्षत्रिय युवक संघ के शिविरों में हम एक प्रक्रिया में से गुजरते हैं जो कष्टदायक है। जिस वातावरण में हम यहाँ रहते हैं और जैसा जीवन व्यवहार हम बाहर करते हैं, उसमें अन्तर है।

यहाँ हमारी स्वतंत्रताएँ छीन ली जाती हैं। जिनका जीवन महानता की ओर अग्रसर होता है वे स्वतंत्र जीवन व्यवहार कभी नहीं कर सकते। वे बिके हुए होते हैं अपने संकल्प के प्रति। हो सकता है ऐसा ज्ञान अभी आपको न हो, बचपन शायद इसमें बाधा पहुँचा रहा हो, पर आपने इन सात दिनों में यह तो महसूस किया ही होगा कि यहाँ का जीवन सामान्य जीवन से भिन्न है। बाहर भी कुछ स्वतंत्रताओं का हनन करना पड़ता है, पर यहाँ तो हनन की सीमाएँ लांघ दी। बोलना चाहें तो-बोलो मत, करना चाहें तो-करो मत। न बोलने का कहा जाता है तो हम बोल पड़ते हैं, आलस्य-प्रमाद हावी होता है तो किसी क्रिया में उलझा देते हैं। कैसी दुविधा है, कैसा संघर्ष है यहाँ की इस प्रक्रिया में। जीवन के हर क्षेत्र में वैसे तो संघर्ष में से गुजरना पड़ता है, पर यहाँ हर कदम पर संघर्ष है। आपने महसूस किया होगा कि जब आपको बोलने को कहा जाता है, तब बोला नहीं जाता और जब मौन रहने को कहा जाता है तो मौन नहीं रह पाते। पंक्ति में चलने पर कष्ट है, पर कष्ट भोग कर कष्ट सहिष्णु बनना है।

जब शिविर में आए थे तो अनजानी स्थिति थी पर साथ रहे तो प्रसन्नता है आज। हालांकि आज स्वागत का उत्साह नहीं है, पर हम नहीं जानते कि क्या घटित हो गया जो प्रसन्नता छा गई। ऐसी स्थिति उन सबकी है जिनका यह पहला शिविर है। आज आप विदा लेकर जाएंगे तो कुछ स्मृतियाँ यहाँ छोड़ जाएंगे और कुछ स्मृतियाँ आप साथ ले जाएंगे। यहाँ से जाकर जानोगे कि इस सर्दी में सुबह पाँच बजे उठना मुश्किल होता है, पर यहाँ तो यह सरल हो गया था। बाहर तथा घर में भी संस्कारवान बनाने के लिये परिश्रम करने वाला कोई नहीं होगा। यहाँ घटप्रमुख आपको बार-बार टोक कर राह पर लाते हैं। शिक्षक योजना बनाकर हमें शिक्षा देते हैं। लोग भोजन बनाते हैं, व्यवस्था करते हैं। यह सब कितनी मेहनत भिन्न-भिन्न प्रकार की की जाती है। माता-पिता बच्चे को कष्ट से बचाने के लिये सुबह जल्दी नहीं उठाते। यहाँ उठाते हैं इसका उद्देश्य आपको कष्ट देना नहीं है, परन्तु आपके मन, चित्त आदि पर आए मल को दूर करना उद्देश्य है। सीधा खून का सम्बन्ध नहीं, रिश्तेदार नहीं, माता-पिता नहीं पर फिर भी आपके लिए इन सबने मिलकर कितना परिश्रम किया। इस बात को अनुभव करें और ऐसी व्यवस्था देने वाले क्षत्रिय युवक संघ के प्रति कृतज्ञता महसूस करें।

प्रवचन में लगातार ढाई-तीन घण्टे बैठे सुनने का अभ्यास कष्टदायक रहा होगा। खेलों में व सहगायन गाने में प्रसन्न रहे होंगे, नृत्य भी किया होगा। पर कुछ कार्यक्रम कष्ट देने वाले भी लगे होंगे। पर यह सब क्यों किया गया? इसलिए कि हम कष्ट सहिष्णु बनें। निष्क्रिय क्षत्रिय समाज मृत समाज जैसा हो गया। हमारी सैंकड़ों वर्षों की निष्क्रियता ने हमें क्षत्रिय ही नहीं रहने दिया। निष्क्रियता में पनपी विकृतियों ने हमारा क्षत्रियत्व ही नष्ट कर दिया। हमारे समाज की सीमाओं में, सोसायिटियों में समाज की बुराइयों और कुरीतियों को मिटाने की प्रतिज्ञाएँ की जाती हैं, पर असल में होता कुछ नहीं है। संघ हमारे अन्दर प्राण फूंकना चाहता है ताकि हमारी निष्क्रियता न रहे। लोग आलोचना तो करते रहते हैं पर काम कुछ नहीं करते।

(शेष पृष्ठ 29 पर)

गतांक से आगे

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

– चैनसिंह बैठवास

भगवान की इस सृष्टि में जन्म-मरण का सिलसिला चलता रहता है। शिशु का जिस घर में जन्म होता है, उस घर से सम्बन्ध जुड़ने के कारण वह उसका परिवार हुआ। वह परिवार जिस गाँव में होता है, वह उसका गाँव हुआ। वह गाँव जिस प्रदेश में होता है, वह उसका प्रदेश हुआ और वह प्रदेश जिस राष्ट्र में होता है, वह उसका राष्ट्र हुआ। वह शिशु जन्म से लेकर मरने तक एक परिवार, एक गाँव, एक प्रदेश व एक राष्ट्र का होकर रह जाता है यानी वह अमुक परिवार, अमुक गाँव, अमुक प्रदेश व अमुक राष्ट्र की सीमा में सिमट कर रह जाता है। यही उसका परिचय है। हम भी एक परिवार, एक गाँव, एक प्रदेश व एक राष्ट्र के होकर रह जाते हैं। इसी तरह इस संसार का हर मानव एक परिवार, एक गाँव, एक प्रदेश व एक राष्ट्र का होकर रह जाता है, पर जो महापुरुष होते हैं वे किसी सीमा में बन्धे नहीं होते। वे भौगोलिक सीमा में बंधते नहीं। वे किसी एक के होकर नहीं रहते, सब के होते हैं और सभी उनके होते हैं। पूज्यश्री तनसिंहजी भी एक महापुरुष थे जो त्रस्त मानव समाज को दयनीय स्थिति से उबारने के लिए इस युग में हमारे बीच आये।

एक बार माँ-बेटे के बीच में घर खर्चे के सम्बन्ध में संवाद हुआ। माँ सा ने पूज्य श्री तनसिंहजी से कहा- ''बेटा! तूं घर के लिए जो पैसा देता है, वह घर खर्च चलाने के लिये पर्याप्त नहीं है, इसमें मैं घर कैसे चलाऊँ?'' इस पर पूज्यश्री ने कहा-''माँ! इस परिवार के अलावा मेरा एक और भी परिवार है, उसे भी मुझे ही सम्भालना पड़ता है।'' तब माँ सा ने कहा-''तेरा और कैसा परिवार?'' तब पूज्य श्री तनसिंहजी ने कहा-''इस परिवार के सम्बन्ध बने हैं-इस घर में जन्म लेने के कारण और उस परिवार (श्री क्षत्रिय युवक संघ) में सम्बन्ध बने हैं, हमारे त्याग, तपस्या और साधना के आधार पर।''

जिनको बड़े काम करने होते हैं, उनका एक परिवार नहीं, अनेक परिवार होते हैं, जिन्हें उन्हें ही सम्भालना होता है। पूज्य श्री तनसिंहजी अपने परिवार के लिये नहीं, बल्कि संपूर्ण विश्व की बिगड़ी व्यवस्था को व्यवस्थित करने आये थे। पथ विचलित व धर्म विस्मृत क्षत्रिय समाज को अपने नियत कर्तव्य कर्म व स्वधर्म की याद दिलाने, सुप्त पड़ी क्षात्रशक्ति को जागृत कर क्षत्रियत्व का बोध कराने के लिए पूज्य श्री तनसिंहजी का एक क्षत्रिय के घर में जन्म हुआ। क्षात्रवृत्ति न कोई जातीय वृत्ति है और न राष्ट्रीय वृत्ति है, यह तो अन्तर्राष्ट्रीय और संपूर्ण मानवता की वृत्ति है जिसे गति देने के लिए आये थे, न कि एक परिवार में सिमट कर रहने के लिए।

क्षात्रधर्म जैसे श्रेष्ठ धर्म को धारण करने वाले क्षत्रिय अपने पथ से भटके तो सारा संसार भी अपने मार्ग से भटक गया क्योंकि संपूर्ण मानवता का भाग्य क्षत्रिय समाज से बंधा हुआ है। क्षत्रियों के प्रमाद के कारण समाज में अनेक दोष पैदा हो गये, विसंगतियाँ बढ गई और कौम अधोगति को प्राप्त हो गयी। क्षत्रिय विजातीय तत्वों से ग्रस्त होकर धीरे-धीरे निस्तेज होने लगे। क्षत्रिय समाज की दिशा और दशा दोनों बिगड़ने लगी। त्रस्त मानव समाज को दयनीय स्थिति से उबारने वाले, सबको राह पर रखने वाले, प्रजा का पालन-पोषण और रक्षण का उत्तरदायित्व निभाने वाले, साधु-सन्तों व सज्जनों के आश्रयदाता, सदैव सत्य, न्याय और धर्म के हिमायती, दुष्टों और दुर्जनों के संहारक, आन-बान, मान और मर्यादा के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर करने वाले, स्वाभिमानी क्षत्रियों की ऐसी क्षत अवस्था देख पूज्य श्री तनसिंहजी का हृदय वेदना से भर उठा। क्षत्रिय समाज की दुर्दशा ने, इनके गिरते अस्तित्व ने पूज्य श्री तनसिंहजी को व्यथित कर दिया।

पहले बता चुके हैं, संपूर्ण मानवता का भाग्य

क्षत्रिय समाज से बंधा है। क्षत्रिय शक्ति का अभ्युदय न केवल क्षत्रिय समाज के लिए बल्कि संपूर्ण मानव जीवन व प्राणीमात्र की आवश्यकता है। इसलिए समाज, राष्ट्र व विश्व को बचाने के लिये इस युग में क्षात्रधर्म के समग्र प्रशिक्षण की आवश्यकता महसूस की गयी। और पूज्य श्री तनसिंहजी ने पथ विचलित क्षत्रियों को अपने स्वधर्म पर आरूढ करने, उन्हें नियत कर्तव्य कर्म व उत्तरदायित्वों का बोध कराने तथा तमोगुण से आक्रान्त क्षत्रियों में सतोगुण का संचार कर सुप्त क्षात्रशक्ति को जागृत करने हेतु श्री क्षत्रिय युवक संघ रूपी परिवार की स्थापना की और श्री क्षत्रिय युवक संघ के माध्यम से सुप्त पड़ी क्षात्र शक्ति को जागृत कर क्षत्रियों को अपनी शक्ति का भान कराना ही अपना ध्येय बना डाला। पथ विचलित और तमोगुण से आक्रान्त क्षत्रियों में सतोगुण का संचार कर, क्षत्रियोचित गुणों से पुन: नवाजने हेतु गाँव-गाँव, नगर-नगर अलख जगाकर क्षात्रधर्म की शिक्षा देने लगे। क्षात्रधर्म की शिक्षा के माध्यम से क्षत्रिय समाज के लोगों का शुद्धिकरण कर उनके जीवन को परिष्कृत व उन्नत बनाया जा सकता है।

पूज्य श्री तनसिंहजी ने अपने इस सांघिक परिवार के सम्बन्ध में अपने हृदय के उद्‌गार व जो भाव व्यक्त किये हैं, उन्हीं की जुबान से-

''जन्म के परिवार के सिवाय भी मेरा एक परिवार है। एक ऐसा कुटुम्ब है, जिसने शायद इतिहास में पहली ही बार देश, काल, परिस्थिति, अवस्था और जन्म तक की सीमाओं का अतिक्रमण कर अपने आपका निर्माण किया है। मैंने जब कभी अपने इस परिवार की ओर देखा, मुझे प्रतीत हुआ जैसे पवित्रता अवतार लेकर आई है। पिता का वात्सल्य, माँ की ममता, गुरु की कृपा, भगिनी का स्नेह, बन्धु का बन्धुत्व, पत्नी की परायणता, पुत्र की भक्ति और जीवन के समस्त कर्तव्याधिकारों की धाराएँ अनेक होकर भी मेरे इस कुटुम्ब की एकता में समा गई हैं। मुझे अपने इस सांघिक परिवार पर गर्व है, जो बिछुड़े हुओं के मेले लगाता है, जंगल-जंगल की राख छानता है, रातें जगाता है, कष्टों और अभावों पर मुस्कराता है, प्रताड़नाओं और मेरी क्रोध भरी उलाहनाओं को अमृत समझकर पीता है, गाँव-गाँव और नगर-नगर में घूम-घूम कर जिन्दगी के दीपक जलाता है और ठोकर लगने पर हर बार उठने का मंत्र सुनाता है।''

सांघिक परिवार यानी श्री क्षत्रिय युवक संघ एक संस्था नहीं बल्कि संपूर्ण योग मार्ग है, यह एक उपासना पद्धति है, साधना मार्ग है। यह साधना मार्ग साधक जीवन से निकल कर ईश्वर तक जाता है जो साधक का साध्य है, गंतव्य है, अर्थात् श्री क्षत्रिय युवक संघ ईश्वर प्राप्ति का मार्ग है। पूज्य श्री तनसिंहजी की अपने इस सांघिक परिवार से अत्यधिक आत्मीयता थी। पूज्य श्री के मार्गदर्शन में यह सांघिक परिवार फलने-फूलने लगा और विस्तार पाने लगा। साधना पथ पर चलने वाले साधकों के जीवन को परिष्कृत बनाने व उनके उन्नत भविष्य निर्माण हेतु पूज्य श्री तनसिंहजी ने अपने स्वयं सेवकों को निर्देश व हिदायतें देते हुए, अपने आत्मीय भाव व्यक्त करते हुए कहा-

''मेरे आत्मीय कुटुम्ब! रुको मत, आगे बढो। जो कुछ तुमने प्राप्त किया है, उससे संतुष्ट न होकर आगे बढो। सच्चा संतोष आगे ही है और खुद का तथा पीछे आने वालों की प्रगति का यही मार्ग है। तुम मुझे परेशान भी जी भरकर कर सकते हो, किन्तु जो उत्साह और जीवन मुझे प्रदान करते हो उसके मुकाबले में यह परेशानी कुछ भी नहीं। इसीलिए तुम्हारे सब दुर्गुणों के बावजूद भी मैं तुम्हें स्नेह करता हूँ, क्योंकि दुर्गुणों को समाप्त भी तुम्हीं करते हो।''

किसी भी परिवार को देख लो, परिवार में सभी एक जैसे नहीं होते। पूज्य श्री तनसिंहजी के इस सांघिक परिवार में भी सभी एक जैसे नहीं थे। कुछ परेशान करने वाले, तो कुछ दिक्कतें पैदा करने वाले भी इस परिवार में थे, पर पूज्यश्री ने अपने आत्मीय धागे से सभी को जोड़े रखा। सभी स्वयंसेवकों को साथ लेकर चलते रहे और बेहतरीन व बखूबी ढंग से इस परिवार का संचालन करते हुए ऐसे स्वयंसेवकों के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते कहा-

(शेष पृष्ठ 16 पर)

गतांक से आगे

मेरी साधना

लेखक - पू. आयुवानसिंहजी, गुजराती भाष्य-श्री बलवंतसिंह पांची, हिन्दी अनुवाद-प्रोफेसर रूपसिंह लिम्बड़ी

अवतरण-53

स्वार्थ के क्षुद्र नाले की प्रवाह-दिशा में परिवर्तन लाना होगा, उसे रूपान्तरित कर सामाजिक महत्त्वाकांक्षा की पवित्र भागीरथी में मिलाना होगा। समाज-कल्याण और वैयक्तिक हित-साधन में से वैयक्तिक हित-साधन को तिरोहित करना होगा,-सामाजिक ध्येय को वैयक्तिक ध्येय बनाना पड़ेगा। तब कहीं जाकर उस तत्त्व की प्राप्ति होगी जो मेरी साधना का आधारभूत लक्ष्य है।

समा जाऊँ मैं समाज में, समाज मेरी श्वास।
अपने अन्दर में जगाऊँ, ऐसा अटूट विश्वास।।

इसके पूर्व अवतरण में साधक ने स्वार्थ को समाज का भयंकर शत्रु कहकर उसे समाज के लिए हानिकारक बताया। अब इस अवतरण में स्वार्थ को कैसे छोड़ा जा सकता है, उसकी समझ देते हैं। प्रकृति का यह नियम है कि किसी भी तत्व का संपूर्ण नाश नहीं होता है, इसका रूपान्तरण, परिवर्तन हो सकता है, उसके स्वरूप को बदला जा सकता है। पूर्व अवतरणों में 'अहं' का स्वाभिमान में रूपान्तरण करने की, अहं को स्वाभिमान में बदलने की बात कही गयी है। यहाँ पर स्वार्थ का रूपान्तरण, परिवर्तन कैसे किया जा सकता है, यह समझाने का प्रयत्न किया गया है।

हम देखते हैं कि छोटे-छोटे झरने, नालियाँ आदि जब नदी में मिल जाते हैं और नदी जब गंगा में मिल जाती है तो सब गंगाजल बन जाता है। उसी प्रकार हमारे छोटे-छोटे क्षुद्र स्वार्थ की नालियों का दिशा परिवर्तन करना है। अपने वैयक्तिक स्वार्थ को सामाजिक स्वार्थ में परिवर्तन करना होगा। यह कैसे हो सकता है? इसके लिए सबसे प्रथम वैयक्तिक हित और सामाजिक हित क्या है, इसे समझना पड़ेगा। इन दोनों का अन्तर समझ कर सामाजिक हित को महत्त्व देना होगा। जरा सूक्ष्मता से निरीक्षण करेंगे तो पता चलेगा कि जहाँ पूरे समाज का हित होता है वहाँ व्यक्ति का हित अपने आप समाहित रहता है। बस व्यक्ति में इस बात का विश्वास पैदा करना होगा।

जब व्यक्ति में इस प्रकार का विश्वास होगा तो फिर उसे व्यक्तिगत अपना हित और समाज के हित में भिन्नता नहीं मालूम होगी। वह बराबर समझ जाएगा कि समस्त समाज के हित में ही मेरा हित भी समाया हुआ है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को अपने हित को समाज के हित में देखना होगा। जब कभी अपने निजी हित से समाज के हित को हानि पहुँचती है, तो अपने निजी हित को ठुकराना होगा। समाज के हित के आगे व्यक्तिगत स्वार्थ को गौण मानकर उसका त्याग करना होगा। अपने क्षुद्र स्वार्थ की नाली को समाज रूपी गंगा के पवित्र-प्रवाह में बहाना होगा।

अन्त में साधक समझा रहा है कि अपने निजी स्वार्थ की नाली को समाज-गंगा में बहा देने से ही तत्व की प्राप्ति होगी। यह तत्व ही मेरी साधना का आधारभूत अंग है। 'तत्व की प्राप्ति मेरी साधना का आधार भूत लक्ष्य है।' यह वाक्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इसका जितना महत्त्व है, उतना ही इसे समझना कठिन है। महत्त्व की किसी भी बात को समझना सरल नहीं होता है। ऐसी महत्त्वपूर्ण बातों को समझने के लिये हमें अपने को सरल, नम्र, सदाचारी और पुरुषार्थी बनाना पड़ेगा। जटिल, कठिन और महत्त्वपूर्ण बातों को सहजता से समझने की शक्ति प्राप्त करने के ये चार मूल आधार हैं। साधक जिस तत्व प्राप्ति की बात करता है उसकी प्राप्ति के लिये सरलता, नम्रता, सदाचार एवं पुरुषार्थ ये चार मूलभूत आवश्यकताएँ हैं।

इस तत्व को साधक मेरी साधना के मूलभूत लक्ष्य के रूप में स्वीकार करता है। इस तत्व का परिचय पाने के लिये साधना के स्वरूप को जानना आवश्यक है। मेरी साधना सामाजिक साधना है। इसलिए इसका अर्थघटन भी

सामाजिक दृष्टि से करना चाहिए। विषयान्तर से भिन्न-भिन्न अर्थघटन हो सकता है। यहाँ पर क्षत्रिय-समाज की साधना को लक्ष्य करके अर्थघटन किया जाए तो जिस तत्व को मेरी साधना का मूलभूत लक्ष्य कहा गया है, वह तत्व है 'क्षात्रधर्म'। 'मेरी साधना' पुस्तिका और क्षत्रिय युवक संघ की प्रवृतियों का मूल और प्रधान उद्देश्य है-'पथ भ्रष्ट', अपने पथ से गुमराह हुए क्षत्रिय को क्षात्रधर्म के पालन के लिए पथ-दर्शन कराना है। क्षात्रधर्म का संक्षिप्त अर्थ है- 'अमृत तत्व का रक्षण, पोषण और वर्धन तथा विष तत्व का नाश'। सरल भाषा में कहा जाए तो अच्छाई का समर्थन, बुराई का नाश करना। एक शेर प्रस्तुत करता हूँ-

बुराई से बगावत, अच्छे को सलाम।
मूल्यों का पालन, यही संघ का पैगाम।।

विगत पाँच अवतरणों में साधक ने क्षत्रिय समाज के शत्रु-'अहम्' और 'स्वार्थ' का परिचय कराया, उससे मुक्त होने की समझ दी तथा उससे मुक्त होने के उपाय भी बताए। अब आगे के अवतरणों में वीरता, शौर्य एवं उदारता के गुणों को ग्रहण करने और कायरता जैसे दुर्गुणों की चर्चा करके समाज हित को समझा देंगे।

अर्क- दुखी जन की खातिर कृपाणें उठाई,
तमोगुण से मेरी ठनी थी लड़ाई।

- पू. तनसिंहजी

अवतरण-54

कायरता कृपणता की चिरसंगिनी है तो वीरता उदारता की। धूर्त और चालाक व्यक्ति वीरता और उदारता की खाल के नीचे कायरता और कृपणता के नग्न रूप को छिपाकर समाज का शोषण करते हैं। इन गुणों के सही परीक्षण की कसौटी है त्याग और त्याग की पवित्रता की सच्ची कसौटी है विकार-शून्य स्वतंत्र मन की स्वाभाविक प्रक्रिया। मन की इस स्वाभाविक प्रक्रिया के दर्शन मेरी साधना के अन्तर्गत पग-पग पर होने लगते हैं इसीलिए तो छद्म-वेषी लोग मेरी साधना से सदैव घबराते हैं और उसकी निन्दा किया करते हैं।

त्याग, वीरता, पवित्रता मेरी साधना के मूल।
कपटी, दम्भी, आडम्बरी रहें उससे दूर।।

साधक ने इस अवतरण में दो द्वन्द्वों की बात की है। कायरता और कृपणता तथा वीरता और उदारता, इन द्वन्द्वों का अटूट सम्बन्ध है। जहाँ वीरता होगी वहाँ उदारता होगी और जहाँ कायरता होगी वहाँ कृपणता होगी ही। अर्थात् वीर पुरुष हमेशा उदार होते हैं और कायर पुरुष कृपण-लोभी होते हैं।

धूर्त और चालाक लोग अपने दोषों और दुर्बलताओं को-सौहार्द के नीचे छिपाकर समाज को छलते हैं। इस बात को साधक ने 'धूर्त और चालाक व्यक्ति वीरता और उदारता की खाल के नीचे कायरता और कृपणता के नग्न रूप को छिपाकर समाज का शोषण करते हैं' कहकर ऐसे लोगों से सावधान रहने का इंगित किया है।

ऐसे लोगों की पहचान क्या है? उन्हें कैसे जानें? इसका मानदण्ड क्या है? तो पहचान कैसे करें, यह भी बताया है। इनकी पहचान-कसौटी है-त्याग। जहाँ पर त्याग का अभाव है, वहीं पर दुर्गुणों का प्रभाव है। 'त्याग की पवित्रता की सच्ची कसौटी है विकार-शून्य मन की स्वाभाविक प्रक्रिया' यहाँ पर 'मन' और 'मन की स्वाभाविक' प्रक्रिया को समझना होगा। कैसा मन? विकार-शून्य मन। जिस मन में किसी भी प्रकार की विकृति न हो। दूसरी बात है 'स्वतंत्र मन'। स्वतंत्र मन का अर्थ है, किसी भी प्रकार के पूर्वाग्रह से रहित मन। जो किसी भी स्वार्थ जन्य विचारधारा से मुक्त हो। जिस पर किसी का प्रभाव न हो। जो विवेकवती बुद्धि से परिचालित हो। भले-बुरे का निर्णय अपने निज-ज्ञान एवं विवेक से करने का जिसमें सामर्थ्य है, वह है स्वतंत्र मन। उसकी जो प्रक्रिया होगी वह स्वाभाविक होगी। उसके व्यवहार में, आचरण में दंभ एवं आडम्बर का अभाव होगा। वह जो भी करता है, उसमें दिखावा नहीं होता है। इस प्रकार की स्वाभाविक मन की प्रक्रिया केवल त्यागी एवं पवित्र व्यक्ति ही कर सकता है।

साधक कहता है, 'मन की इस स्वाभाविक प्रक्रिया

के दर्शन मेरी साधना के अन्तर्गत पग-पग पर होने लगते हैं।' इसका यदि प्रमाण चाहिए तो क्षत्रिय युवक संघ की प्रवृत्तियों का रस पूर्वक, गहराई से और गंभीरतापूर्वक अध्ययन करना चाहिए। इस प्रकार का प्रमाण ढूंढने के लिए समय देना पड़ेगा।

इन सारी बातों को समझना सरल और आसान नहीं है। केवल समय देने से ही काम नहीं चलेगा। अपने जीवन में त्याग और तप को महत्त्व देना होगा। जैसा पू. तनसिंहजी ने कहा है -

सरल है फूलों पे सोना,
काम कांटों से यहाँ।

साधक अपना अनुभव बताते हुए कहता है कि कपटी, ढोंगी, दंभी और आडम्बर करने वाले लोग मेरी साधना से भयभीत होते हैं और उसकी निन्दा भी करते हैं। इस बात का विश्लेषण और विस्तार करना उचित नहीं है।

'विकार-शून्य स्वतंत्र मन की स्वाभाविक प्रक्रिया' के अनुभव के लिए किसी निष्ठावान, समर्पित, वरिष्ठ स्वयंसेवक के जीवन का परिचय उपयोगी हो सकता है। साधारण कक्षा के स्वयंसेवक के परिचय से उपर्युक्त सूत्र की अनुभूति नहीं हो सकती है। सामान्य स्वयंसेवक के आधार पर मूल्यांकन करने से गैर समझ पैदा होने की पूरी संभावना है। क्षत्रिय जाति में जन्म धारण करने वाले प्रत्येक क्षत्रिय को क्षत्रिय युवक संघ अपना स्वयंसेवक मानता है। इससे विशेष अन्य वर्ग के भी जो संघ की विचारधारा को मानते हैं और तद्नुसार अपना जीवन व्यवहार करते हैं, उन सबको भी संघ स्वयंसेवक के रूप में स्वीकार करने को तैयार है। इससे सभी स्वयंसेवकों को निष्ठावान, समर्पित और उपरोक्त सूत्र के अनुरूप जीवन व्यवहार करने वाले मान लेने की गलती नहीं करनी चाहिए। ऐसी भूल या गलत मूल्यांकन समाज एवं संघ के लिए उपकारी नहीं होता है।

किसी भी समाज के मूल्यांकन के लिए दो बातें हैं-वीरता और उदारता, कायरता और कृपणता। जिस जाति में वीरता और उदारता का प्रमाण अधिक है, वह श्रेष्ठ है। जहाँ कायरता और कृपणता का प्रमाण अधिक है, वह कनिष्ठ। इस मानदण्ड के आधार पर हमें अपनी जाति का मूल्यांकन करना चाहिए। यदि वीरता और उदारता का प्रमाण अधिक मालूम होता है तो हमारी जाति श्रेष्ठ की श्रेणी में समाविष्ट होगी। परन्तु ऐसा मूल्यांकन कौन करेगा? परमात्मा से प्रार्थना है कि ऐसा मूल्यांकन करने की वृत्ति हमारे अन्दर जागृत हो।

उदारता दोषों को ढंक देती है, कृपणता गुणों को।

चिन्तन मोती- फूलों में जो स्थान सुगन्ध का है,
फलों में जो स्थान रस का है,
भोजन में जो स्थान स्वाद का है,
वही स्थान जीवन में सदाचार का है।

अवतरण-55

भावों की उमंगमयी युवावस्था का नाम उत्साह है। इसमें जीवन की स्वस्थ लाली, यौवन की मधुर मस्ती, भावों की सरल पवित्रता और कामनाओं की लक्ष्य-निर्दिष्टता के एक साथ ही दर्शन होते हैं। यह सफलता का निश्चित सौपान और जीवन का सच्चा साथी है। इसके संयोग मात्र से क्षुद्रता महत्ता में रूपान्तरित, निराशा निराकार और आशा साकार होकर जीवन-पथ पर उल्लास और आनन्द बिखेर देती है। यही उत्साह मेरी साधना का जीवन-मंत्र और मेरे जीवन की प्रबल प्रेरक शक्ति है। जिस दिन यह नष्ट हो जाएगा उस दिन जीवन और साधना दोनों ही निष्प्राण हो जाएँगे।

उत्साह अमूल औषध जिसके चार लाभ।
आशा, आनन्द प्रेरणा और चौथा उल्लास।।

स्वार्थ, लोभ, अहम् और कायरता जैसे दोष व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र के लिए कितने घातक हैं, इसकी चर्चा साधक ने विगत दो-तीन अवतरणों में विस्तृत रूप से की। अब इस अवतरण में वैयक्तिक एवं सामुदायिक कार्यों में सफलता के लिए आवश्यक गुण-उत्साह की चर्चा करते हैं।

उत्साह की परिभाषा देते हुए कहते हैं-'भावों की

उमंगमयी युवावस्था का नाम उत्साह है'। समझने में थोड़ा कठिन मालूम होता है। उत्साह क्या है? शब्दों के माध्यम से वर्णन द्वारा उसका ख्याल देना कठिन मालूम होता है। उसके प्रत्यक्ष दर्शन से उत्साह क्या है, यह जाना जा सकता है। उत्साह का प्रत्यक्ष निदर्शन का सौभाग्य तो क्षत्रिय युवक संघ के प्रशिक्षण शिविरों में ही प्राप्त हो सकता है। और तो, ईश्वर क्या है? इस प्रश्न का उत्तर पाने में और उत्साह क्या है, इस प्रश्न का उत्तर पाने में समान कठिनाई है।

हमारे ऋषि-मुनि और वैज्ञानिक सृष्टि के प्रारम्भ काल से ईश्वर क्या है, इस प्रश्न का उत्तर ढूंढने में लगे हुए हैं, अभी तक उन्हें संतोषप्रद उत्तर नहीं मिल पाया है। अन्त में हमारे ऋषि-मुनियों ने थककर कह दिया-'नेति-नेति' न इति-'यह नहीं, यह नहीं'। वैज्ञानिक जब थक जायंगे तब कहेंगे-प्रभु तुम्हारी महिमा अपरम्पार है। किन्तु आज स्वार्थ एवं संकुचित दृष्टि रखने वाले बाबा, धर्मगुरु; जो अपने को सर्वशक्तिमान होने का भ्रामक दावा कर जनसाधारण को भगवान से दूर घोर अंधकार में डालकर परमेश्वर और समष्टि का अपराध करते हैं; ऐसा नहीं लगता?

गुजराती भाषा के महाकवि नानालाल ने कहा है- 'तूं आधे मा आधे, पण समीप माँ नित्य हसतो' अर्थात् हे परमात्मा! तू दूर से ही दूर होते हुए भी हमारे पास में ही हँसता है। ऐसे हमारे समीप रहने वाले प्रभु को समझने के बदले भगवान यहाँ है, वहाँ है, अमुक निश्चित स्थान में है, ऐसी बातें कहकर संसार को अज्ञान के गहरे अंधकार में ढकेलने वाले अपराधी को पापी कहने में अतिश्योक्ति तो नहीं है न?

थोड़ा विषयान्तर हो गया। उत्साह क्या है इसका उत्तर ढूंढने में भगवान बीच में आ गये। वैसे तो यह अवतरण सरलता से समझ में आ जाए, ऐसा है। अधिक चर्चा की आवश्यकता नहीं है। फिर भी देखें साधक ने भावुकता सभर युवावस्था को उत्साह कहा है। कुछ लोग बहुत भावुक होते हैं। लेकिन केवल भावनाओं में ही डूबे रहते हैं। कर्तव्यता शून्य। भावनाओं को कर्मरत करना चाहिए। हमारी कई सामाजिक संस्थाओं की प्रवृत्तियाँ उत्साह के अभाव में मंद गति से चलती हैं। शिथिल हो जाती हैं और बन्द भी हो जाती हैं। इस विषय में संस्थाओं के अगुवाओं को गंभीरतापूर्वक विचार करना चाहिए और कार्यकर्ताओं के उत्साह को बढाने वाले कदम उठाने चाहिए। संस्थाओं से संलग्न कार्यकर्ताओं के उत्साह बढाने वाले कार्यक्रमों का आयोजन करना चाहिए। शिक्षा क्षेत्र में छात्रों का उत्साह बढाने के कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है और उसमें सफलता भी मिल रही है। परन्तु सामाजिक कार्यकरों का उत्साह बढाने के लिए भी कार्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिए।

साधक के लिए उत्साह सफलता का अमोघ अस्त्र है। साधक उत्साह को किस रूप में देखता है, उसके शब्दों में ही देखिए-'यही उत्साह मेरी साधना का जीवन मंत्र और मेरे जीवन की प्रबल प्रेरक शक्ति है। जिस दिन यह नष्ट हो जाएगा उस दिन जीवन और साधना दोनों ही निष्प्राण हो जाएँगे।' यह बात, उत्साह का रूप, हमारी समझ में तब आ सकता है जब हम साधक बन जाएँ। साधक बनकर जब हम इस बात को अपने जीवन में उतारेंगे तब हम इसे समझ पाएंगे। आज तो यह बात हमसे योजन दूर है। साधक का कहना है-'इसके (उत्साह के) संयोगमात्र से क्षुद्रता महत्ता में रूपान्तरित, निराशा निराकार और आशा साकार होकर जीवन-पथ पर उल्लास और आनन्द बिखेर देती है।' साधक के इस भाव को स्वीकार करके हम उससे सहयोग करें, यही आज के समय की माँग है।

हमारे अन्दर उत्साह का अभाव है। और इस अभाव के कारण हम बहुत कुछ गंवा रहे हैं। निष्फल होते हैं ऐसे कई उदाहरण दिए जा सकते हैं परन्तु विस्तार भाव से उन्हें छोड़कर इस प्रश्न पर विचार करें कि सामाजिक क्षेत्र में उत्साह बढाने के लिए क्या करना चाहिए? आज तो परिस्थिति यह है कि कोई हमसे पूछे कि आपके पास कोई उत्साह वर्धक केन्द्र है क्या? तो उसके उत्तर में सिर खुजलाने के सिवाय क्या उत्तर है?

इस अवतरण की चर्चा के प्रारम्भ में ही उत्साह के दर्शन कराने वाले स्थान-संस्था 'क्षत्रिय युवक संघ' का उल्लेख किया गया है। यदि आपको विस्मरण हुआ है तो पुनः पढिये। अभी तो हमारे पास बढिया कोई अन्य मार्ग नहीं दिखाई देता। अगर है, तो कृपा करके बताइये, बिना हिचकिचाहट के उसको स्वीकार करना चाहिए। यदि इस मार्ग का कोई विकल्प ही नहीं है तो उस पर चलना शुरू कर दें। जितना विलम्ब किया जाएगा, लक्ष्य प्राप्ति में उतनी ही देरी होगी। इस मार्ग पर जीव, जन और जगत का कल्याण है। कल्याण के मार्ग में तप और त्याग होना चाहिए। 'मेरी साधना' का मार्ग तप और त्याग का मार्ग है। तप और त्याग की नींव पर ही तो क्षात्रत्व की भव्य इमारत बनी हुई थी। आज वह मलबा बन गई है। उसे अधिक भव्य और उज्ज्वल बनाने के लिए पुरुषार्थ करना होगा। उस पथ पर चलने की शक्ति एवं समझ हमें परमशक्ति से प्राप्त हो, यही प्रार्थना है।

अर्क- उत्साह का वह स्थान हो जहाँ सब पाएँ विश्राम।
सुखी के साथ में हो, दुखी पावे आराम।।

अवतरण-56

फूट मेरे अन्तःकरण का स्वाभाविक धर्म नहीं। इसका जन्म तो स्वार्थ और अहं के समागम से होता है। तब चोर को न मारकर चोर की माँ को ही क्यों न मारूँ,-न होगा बांस न बजेगी बांसुरी। मेरी साधना की प्रकृति 'एकोऽहम् बहुस्याम' की है। उसके लिए विभाजक तत्वों का विनाश आवश्यक है।

छल-कपट, दगा-फूट, स्वार्थ अहं संतान।
फलने के पहले विषवृक्ष का करना है पतन।।

इस अवतरण में साधक ने अपने अन्तःकरण की स्वाभाविक निर्दोषता, पवित्रता और आंतरिक शुद्धि का परिचय दिया है। और यह कहना चाहते हैं कि छल करना, कपट करना, विश्वासघात करना आदि दोष मनुष्य का मूलभूत स्वभाव नहीं है। मतलब, कि आत्मा तो सबकी शुद्ध-बुद्ध, निर्दोष, निर्मल तथा पवित्र ही होती है। ये जो दोष हैं वे तो निकृष्ट संगत का परिणाम है। जब किसी संस्कारी, संयमी, सदाचारी, परिवार के बच्चों में, संतान में झूठ, चोरी, छल करना, जुआ खेलना, शराब का सेवन करना आदि दोष दिखाई देते हैं तो प्रश्न उठता है कि ऐसे संस्कारी परिवार की संतान असंस्कारी और भ्रष्ट क्यों?

सोच-विचार एवं जाँच करने पर मालूम होता है कि ये सब बुरी संगत का फल है। माता-पिता एवं अभिभावकों की बेदरकारी के कारण संतान बचपन से ही बुरी संगत में फँस जाती है। बुरे दोस्त उसको दोष और दुष्कृत्यों की ओर ले जाते हैं।

इस परिस्थिति का कारण बताते हुए साधक कहता है कि वास्तव में 'अहम्' तथा 'स्वार्थ' के कारण ही व्यक्ति दूषित बनता है। इसलिए इससे दूर रहें। ऐसे लोगों की संगत व सम्पर्क से बचना। मतलब यह कि अहम् को स्वार्थ को पोषित करने वाले वातावरण और ऐसी प्रवृत्तियों से दूर रहें। न ऐसा पठन-पाठन हो। और निरंतर आत्म निरीक्षण करते रहें कि कहीं मेरे में ये दोष सुषुप्त रूप से पड़े तो नहीं हैं न। यदि थोड़ी सी भी शंका हो तो तुरन्त दूर करें तथा सत्पुरुषों का संग प्राप्त कर लें, सद्ग्रंथों का स्वाध्याय करें और सद् प्रवृत्तियों में सहयोग दें, जिससे आत्मा की शुद्धि आत्मबल में वृद्धि करती है, उससे दोषों से बचने का बल मिलता है। हमारे जीवन में दोषों के प्रवेश करने का कारण है-हमारी स्वार्थ परायणता और हमारा अहम्। यद्यपि स्वार्थ से बचना और अहम् को छोड़ना कठिन अवश्य है परन्तु असम्भव नहीं। साधक ने कहा है कि विषफल का नाश करने के लिये विष वृक्ष का नाश करना चाहिए। दोष यदि विष है तो उसके मूल स्वार्थ और अहम् विषवृक्ष हैं। इसलिए स्वार्थ और अहम् को दूर करना प्रथम कर्तव्य है। फिर 'न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी'। स्वार्थ को छोड़कर त्याग को स्वीकार करना तथा अहम् को छोड़कर नम्रता को स्वीकार करना ही विषवृक्ष को काटना है। जिनके जीवन में सरलता, नम्रता और त्याग हैं वे स्वयं तो शोभायमान हैं ही, किन्तु समाज को भी शोभायमान करते हैं।

ऐसे सज्जनों के प्रति हमारे हृदय में प्रेम होता है।

हम उनका आदर करते हैं और उनके जीवन व्यवहार का अनुसरण भी करना चाहते हैं। यदि हम उनके जीवन व्यवहार को अपने जीवन व्यवहार में उतार लें, स्वीकार करके तद्नुसार अपना जीवन बना लें, तो हमारे जीवन से स्वार्थ और अहम् भी दूर हो सकते हैं। लेकिन इसके लिए हमारे मन में दृढ निश्चय होना चाहिए और हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि 'स्वार्थ एवं अहम्' न केवल स्वयं व्यक्ति के शत्रु हैं, अपितु परिवार, समाज तथा राष्ट्र के भी शत्रु हैं। यदि हमारे मन में यह बात पक्की बैठ जाए कि स्वार्थ एवं अहम् हमारे शत्रु हैं, तो फिर उनको दूर करने में कठिनाई नहीं होगी। ये सब बातें बोलने में, लिखने में जितनी आसान मालूम होती हैं उतनी आसान व्यवहार में लाने में नहीं होती हैं। परन्तु हमारे अध:पतन को रोकने के लिए यह करना पड़ेगा।

यह तब सम्भव हो पाएगा जब हमारा क्षात्रत्व जाग उठेगा। और क्षात्रतत्व की जागृति के लिए ही तो, क्षत्रिय युवक संघ की प्रवृतियाँ चल रही हैं। क्षात्रत्व का मूल धर्म है त्याग और बलिदान। ये दोनों स्वभाव आज हमसे दूर हो गये हैं। हम समर्पण नहीं कर सकते हैं। हमारे लिए दुख की बात तो यह है कि हम इन प्रवृतियों से दूर रहने के लिए तथ्यहीन तर्क करते हैं कि 'यह तो अट्ठारहवीं शताब्दी की बातें हैं'। हमने अपने क्षात्रत्व के गुण धर्म को बहुत पीछे छोड़ दिया है और इस तथ्य को स्वीकार भी नहीं करते हैं।

समाज के लिए जो विघातक हैं, राष्ट्र के लिए जो विघातक हैं, ऐसे दोषों का क्षत्रिय युवक संघ के शिविरों में परिचय-पहचान कराके उनसे दूर रहने की शिक्षा दी जाती है। अपने बालकों को ऐसी शिक्षा देने को मन तो ललचाता है, लालच तो अवश्य आता है परन्तु संघ के शिविरों में थोड़ी कठिनाई भी झेलनी पड़ती है, कष्ट सहन करना पड़ता है-भूमि शयन, प्रात:काल में बड़े सवेरे जागना, भोजन रुचिकर न मिले, ऐसी-ऐसी असुविधाओं के बहाने बनाकर हम अपने बच्चों को जीवन एवं समाजोपयोगी ऐसी उत्तम शिक्षा से वंचित रखते हैं, दूर रखते हैं।

साधक का कहना है-मेरी साधना का स्वभाव एक से अनेक होना है। एक से अनेक होने के बाद विभाजक तत्व इसमें विभाजन न करें, इसलिए जागृत रहकर इन विभाजक तत्वों की पहचान करना आवश्यक है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को अपने आप का निरीक्षण-आत्मावलोकन करना चाहिए। कहीं मेरे भीतर तो इन विभाजक तत्वों ने प्रवेश नहीं कर लिया है न। यदि प्रत्येक व्यक्ति इस प्रकार की जागृति रखेगा तो फिर समाज को सुधारने की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं रहेगी। विभाजक तत्वों से जब व्यक्ति दूर रहेगा तो समाज अपने आप ठीक हो जाएगा। परन्तु स्थिति यह है कि व्यक्ति को अपने में कोई दोष नहीं दिखाई देता है, अन्यों में दोष ही दोष दिखाई देते हैं और अपने अहम् के कारण हम किसी की बात मानने को तैयार भी नहीं हैं।

अर्क- प्रार्थना प्रभु को खुश करने का साधन नहीं है।
यह तो आत्मबल प्राप्त करने का औषध है।।

(क्रमश:)

अवसर खोकर लोग उसके पीछे कितना रोया करते हैं। साधक के लिए तो अवसर सचमुच ही एक महत्त्वपूर्ण क्षण है, जो एक बार खोने के बाद बहुत कठिनाई से दुबारा आता है। लेकिन जब अवसर दहाड़ मार कर उन्हें जगाने की चेष्टा करता है, तब कुछ लोग अपनी आशंकाओं के कारण इतने मूढ बन जाते हैं कि वे साधारण लोगों की भाँति असाधारण भूलें कर बैठते हैं। कभी-कभी तो ऐसी भूलें होती हैं, कि जीवन उनके प्रायश्चित में ही बीत जाता है।

– पू. तनसिंहजी

महान् क्रान्तिकारी-राव गोपाल सिंह-खरवा

– ले. सुरजनसिंह झाझड़, संकलन व सम्पादन-डॉ. भंवरसिंह भगवानपुरा

प्रस्तावना, भूमिका तथा प्राक्कथन

प्रस्तुत लेख एक ऐसे आदर्श क्षत्रिय-नरेश की जीवन-गाथा है, जो हमारे स्वाधीनता-संग्राम का उद्‌भट सेनानी, देशप्रेम का दीवाना, क्रांति का अग्रदूत और त्याग का तीर्थ था। राजस्थान के एक प्रतिष्ठित सामंती घराने में जन्म लेकर भी जिसने देश की मुक्ति के लिए न केवल अपनी वैयक्तिक सुख-सुविधा एवं राजसी ऐश्वर्य को ही तिलांजलि दे दी, अपितु अपनी वंश परम्परागत जागीर सहित अपना सर्वस्व दाव पर लगा दिया। शौर्य और साहस का प्रतिरूप, निर्भीकता का प्रतीक-स्वाभिमान का सुमेरू और तेजस्वी व्यक्तित्व का धनी वह देशभक्त नरेश था-राव गोपाल सिंह-खरवा। उसकी यह जीवनी वस्तुत: ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध छेड़ी गई सशस्त्र क्रांति की ही गौरवगाथा है, जिसका लेखन और पठन, दोनों ही हमारी सांस्कृतिक परम्परानुसार तीर्थस्थान के समान पुण्य फलदायी है। विदित हो कि हमारे यहाँ किसी महत् आदर्श या उद्देश्य के लिए संघर्ष करते हुए उत्सर्ग होने वाले वीर का गुणगान करने की परम्परा रही है। उसकी यशोगाथा के लेखन-पठन का तीर्थस्थान सा ही माहात्म्य माना गया है। यही कारण है कि कान्हड़दे प्रबन्ध का रचियता पद्मनाभ अपने चरित्रनायक की प्रशंसा करते हुए कहता है-

कान्हडचरिय जिकोनर भणइ,
एकवित्ति जिकोनर सुणइ।
तीरथफल बोल्यूँ जेतलूँ,
पामइ पुण्य सबे तेतलूँ।।

ठीक ऐसा ही भाव हम्मीरायण के रचियता व्यास भाँडा ने भी व्यक्त किया है-

रामायण महाभारत जिसउँ,
हम्मीरायण तीजऊँ तिसउँ।
पढ़इ गुणइ संभलइ पुराण,
तियाँ पुरषां हुइ गंग-सनान।।

स्वनामधन्य राव गोपालसिंहजी खरवा की यह अतीव पावन एवं प्रेरणादायनी जीवनी उसी कोटि की है एवं इसका यशस्वी लेखक भी उसी गौरव का अधिकारी है, जो इन रससिद्ध कवीश्वरों को प्राप्त है। इस जीवनी के लेखक हैं-राजस्थानी इतिहास के जाने-माने विद्वान और मर्मज्ञ स्व. श्री सुरजनसिंहजी शेखावत झाझड़। वेदुष्य के साथ, जीवन लेखन के रूप में इनकी उससे भी बड़ी योग्यता यह है कि राव साहब के अत्यन्त विश्वासपात्र एवं स्नेह भाजन तथा उनके निजी सचिव रहे हैं। इस नाते उन्हें राव साहब के निकट सम्पर्क में रहने का सौभाग्य मिला है। उनके जीवन से सम्बन्धित हर छोटे-बड़े राजनीतिक घटना-प्रसंग के ये प्रत्यक्षद्रष्टा रहे हैं। इस दृष्टि से, इन दोनों के बीच कुछ वैसा ही घनिष्ट और अनन्य सम्बन्ध रहा है, जैसा प्रख्यात अंग्रेजी विद्वान डॉ. जान्सन और उसके जीवनी लेखक बास्वेल के बीच था। और जान्सन अंग्रेजी साहित्य में सदा के लिए अमर हो गया। राव साहब की जीवनी लिखने हेतु ठा. सा. सुरजनसिंहजी शेखावत झाझड़ से बढ़कर उपयुक्त एवं विद्वान कदापि कोई दूसरा नहीं हो सकता। कारण जैसा कि कबीर ने कहा है-

तू कहता कागद की लेखी
हौं कहता हूँ आँखिन देखी।

इस जीवनी में वर्णित घटनाएँ भी लेखक की ''आँखिन देखी'' हैं। अत: इनकी विश्वसनीयता असंदिग्ध है। भला प्रत्यक्ष दृष्ट सत्य से बढ़कर प्रमाणित और क्या होगा? फलत: यह ग्रंथ अथवा पुस्तक या आलेख हमारे स्वतंत्र-यज्ञ के एक महान् पूरोधा का जीवन चरित्र मात्र न होकर, प्रकारान्तर से राजस्थान में हुई सशस्त्र क्रांति का भी एक प्रमाणिक दस्तावेज बन गया है, जिससे उक्त क्रांति से सम्बन्धी कुछ अनछुए पहलुओं एवं अज्ञात प्रसंगों पर नया प्रकाश पड़ता है। उदाहरणत: यह बात बहुत कम लोगों को विदित है कि बिजोलिया किसान-आंदोलन के

ख्याति प्राप्त नेता विजयसिंह पथिक का असली नाम भूपसिंह था तथा वे राव साहब के निजी सचिव थे। वे मूलतः उत्तरप्रदेश के बुलंदशहर जिले के गुठावलि ग्राम के निवासी थे और जाति के गुजर थे। नौकरी की तलाश में इधर आये थे। अजमेर के बारहठ समरथदानजी की सिफारिश पर राव साहब ने उन्हें अपनी सेवा में ले लिया तथा बाद में उनकी योग्यता से प्रभावित हो अपना निजी सचिव नियुक्त कर लिया। राव साहब की प्रेरणा एवं उनके सान्निध्य से ही इनमें स्वतंत्र-चेतना का उन्मेष हुआ तथा उनके चरणों में बैठकर ही उन्होंने क्रांति का पाठ पढ़ा। वस्तुतः राजनीति के रंगमंच पर उन्हें लाने का श्रेय ही राव साहब को है, जिनके कारण ही वे अपने समकालीन क्रांतिकारियों के सम्पर्क में आए। टाडगढ़ में राव साहब की नजरबंदी के समय भी वे उनके निजी सचिव थे, राव साहब के आदेश पर वहाँ से फरार होने के बाद ही जून, 1915 में उन्होंने अपने को विजयसिंह पथिक के नये नाम से प्रकट किया था। इस प्रकार डॉ. सुरजनसिंह शेखावत ने अथक परिश्रम एवं अनन्य निष्ठा के साथ यह जीवनी तैयार की है। राव साहब की इस जीवन-गाथा को तैयार करने हेतु उन्होंने खरवा ठिकाने के पुराने रेकॉर्ड को तो अपना आधार बनाया ही है, अन्य सभी उपलब्ध स्त्रोतों यथा एतद्विषयक प्रकाशित-अप्रकाशित पुस्तकों, तत्कालीन समाचार-पत्रों में छपी विज्ञप्तियाँ, अंग्रेज-अधिकारियों के साथ हुए उनके पत्राचार आदि का भी भरपूर उपयोग किया है। इस प्रसंग में, लेखक ने राव साहब के समसामयिक क्रांतिकारियों एवं ख्यातनाम व्यक्तियों के साथ उनके अंतरंग सम्बन्धों पर भी व्यापक प्रकाश डाला है, जो इस जीवनी की एक विशिष्ट उपलब्धि है क्योंकि इससे उनके विराट व्यक्तित्व का परिचय मिलता है।

साथ ही राष्ट्रीय संदर्भ में स्वतंत्रता आन्दोलन में उनके ऐतिहासिक योगदान का भी पता चलता है, जिसका अद्यावधि सम्यक मूल्यांकन नहीं हुआ है।

इस सम्बन्ध में, जीवनी लेखक ने बताया है कि राव साहब का अपने समय के प्रायः सभी प्रसिद्ध क्रांतिकारियों एवं देश भक्तों से निकट सम्बन्ध था, जिसमें देश की जानी-मानी विभूतियाँ, जैसे रासविहारी बोस, योगीराज अरविन्द घोष, शचीन्द्रनाथ सान्याल, स्वामी कुमारानन्द, श्यामजी कृष्ण वर्मा, पं. मोतीलाल नेहरू, श्रीमती कस्तूरबा गाँधी, महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन प्रभृति उल्लेखनीय हैं। अरविन्द घोष तो इनका परिचय ''राजस्थान का एक राठौड़ वीर'' कहकर दिया करते थे। राजस्थान के प्रसिद्ध कवि एवं देशभक्त बारहठ केसरीसिंह जी कोटा तो इनके क्षत्रियोचित्त तेज, त्याग, शौर्य और स्वातंत्रप्रेम पर मुग्ध थे। राव साहब की तुलना पंजाब के लाला लाजपतराय एवं महाराष्ट्र के बालगंगाधर तिलक जैसे मूर्धन्य नेताओं से करते हुए उन्होंने लिखा है-

रह्यो 'लाल' पांचाल में, महाराष्ट्र में 'बाल'।
राजत राजस्थान में, गौरवमय 'गोपाल'।।

लेखक ने पुस्तक के चतुर्थ अध्याय में अपने चरित्रनायक की प्रशस्ति में रचित ये सब गीत-छंदादि तथा उनकी स्मृति में विविध जनों द्वारा अर्पित अर्ध्य देकर इस जीवनी को इतिहास की अनमोल धरोहर के साथ साहित्य की भी शाश्वत संपदा बना दिया है-

''भीताँ तणां गोखड़ा भाँजैं,
गीताँ तणां न भाँजै गोख।''

अर्थात् भीतों के 'गोखड़े' तो काल प्रभाव से नष्ट हो जाते हैं, परन्तु गीतों के गवाक्ष कभी नहीं टूटते। कवि-गिरा में निबद्ध राव साहब की यशोगाथा भी अक्षुण्य रहेगी। अंत में, इस जीवनी के सर्वाधिक मार्मिक प्रसंग- राव साहब के 'महाप्रयाण' की ओर पाठकों का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट करना चाहूँगा। भीष्म पितामह के समान अपने आराध्य श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुए उन्होंने जिस स्थितप्रज्ञता से इच्छित मृत्यु का वरण किया, वह देवों को भी दुर्लभ है। प्रस्तुत जीवनी लेखक राव साहब के महाप्रयाण के उस अद्भुत-अलौकिक दृश्य का प्रत्यक्षदर्शी रहा है। उसने इस चमत्कारिक घटना पर पं. झाबरमल्लजी शर्मा जसरापुर द्वारा लिखित एवं 'कल्याण' के गीतातत्वांक में प्रकाशित लेख 'भक्त के महाप्रस्थान का

चमत्कारिक दृश्य' शीर्षक लेख को अविकल रूप से उद्धृत किया है। श्रेय और प्रेय की विलक्षण साधना बिरले ही महापुरुष के जीवन में देखने में आती है। राव साहब ने योगियों की सी जिस आदर्श मृत्यु की कामना की थी, उसी के अनुरूप उनकी इहलीला का संवरण हुआ।

तब चरण चितरू देशहित उर साहस असि हाथ।
क्षात्रधर्म-मत, भक्तिपथ, अचल देहु यदुनाथ।

यदुनाथ कृष्ण ने उनकी वह मनोकामना पूरी की। फूलझड़ी जैसे अपनी शलाका पर सतत जलती हुई आग के फूल बिखेरती जाती है और फूल बिखेरती हुई ही ज्योति में पर्यवसित हो जाती है, उस कर्मयोगी की जीवनयात्रा भी कुछ वैसी ही रही। स्वयं मुक्ति की मशाल बन वह जीवन पर्यन्त क्रांति के स्फूलिंगविकीर्ण करता रहा और अन्त में अपने आराध्य का स्मरण करता हुआ उसी की ज्योति में लीन हो गया। अंग्रेजी की यह उक्ति-

"Mighty in life and mighter in dealth" उनके जीवन पर पूर्णत: चरितार्थ होती है। वे जीवन में तो महान थे ही, मृत्यु में और भी महान् हो गए। ऐसे उस महामानव की यह पुनीत जीवन-गाथा लिख ठा. सुरजनसिंह शेखावत, झाझड़ ने वस्तुत: उस क्रांतिकारी के प्रति कृतज्ञ राष्ट्र की समवेत श्रद्धा को ही वाणी दी है, जो यद्यपि स्वातंत्र शोध के निर्माण हेतु नींव का पत्थर बन काल के गर्भ में समा गया, तथापि अपनी यशोकाया से इसके सिंहद्वार पर कीर्तिध्वज-सा युगों-युगों तक लहराता रहेगा।

(क्रमश:)

पृष्ठ 7 का शेष

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

''इसमें कोई सन्देह नहीं कि तुम्हारे अधिकारों की माँग दिनों दिन बढती ही जा रही है, तुम्हारी आलोचनाओं का मुँह यदा कदा ही बन्द होता है। तुम अब कार्य करने की अपेक्षा उसके सम्बन्ध में बहस करने के लिए सदा बाहें चढाये रहते हो, पर याद रखो मैं हारने वाला नहीं। तुम जितना झुकाओगे, मैं उतना ही अधिक झुकता जाऊँगा, तुम्हारी सब बातें मानूंगा, क्योंकि मैं मानने लग गया हूँ, कि यह तुम्हारी नहीं समय की माँग है, ईमानदारी की माँग है। भगवान के लिये इस सबका उत्तरदायित्व तो कम से कम मेरे ऊपर न डालते, पर यह सोचकर कि दुधारू गाय की लात भी बर्दास्त करनी पड़ती है, मैं सब कुछ पी रहा हूँ-केवल तुम्हारे इस परिवार के नाम पर। तुम ईमानदार हो, योग्य हो, सोचने समझने की तुम्हारे भीतर अद्‌भुत शक्तियाँ जागृत हो गई हैं, किन्तु तुम अपने मूल्यांकन में मुझे बेईमान, अयोग्य और मूर्ख क्यों समझने लगते हो। फिर भी अब तक तुमने जितना मेरे लिए सहन किया है, उसका शतांश भी मैंने अब तक तुम्हारे लिए सहन नहीं किया है। अभी तक पिछला कर्ज ही नहीं चुका है, इसलिए तुम पर मैं कोई कर्ज नहीं चढा रहा हूँ पर यह विश्वास रखो, कि मैं तुम्हारे लिए जिंदा हूँ और तुम्हारे लिए ही मरूंगा और जो अंगुली मेरे हाथ में आ गई उसे नदी के पार लगाने की भरसक चेष्टा करूँगा, चाहे इस क्रिया में मैं खुद ही क्यों न डूब जाऊँ।''

पूज्य श्री तनसिंहजी एक महापुरुष थे। वे एक निश्चित लक्ष्य को लेकर आये थे और वे अपने लक्ष्य के अनुरूप आगे बढते गये। उन्हें कोई क्या कहता है, उनके बारे में कोई क्या सोचता है, बिना किसी पर ध्यान दिये वे आगे बढते गये आगे बढते हुए उन्होंने जो कहा, उन्हीं की जुबानी से -

''मैं अब आलोचनाओं की इसलिए भी परवाह नहीं करता कि मुझे मेरे मार्ग पर आगे बढना है और आगे बढने के लिये यह आवश्यक है कि पीछे रहने वालों की आवाजों पर ध्यान न दिया जाए। अपने विकास के लिये मैं अधिक चिन्तित हूँ और मैं यह सोचता हूँ कि स्वयं के ऊपर उठे या आगे बढे बिना किसी को आगे बढाने या ऊपर उठाने की बात सोचना ही वृथा है।'' **(क्रमश:)**

गतांक से आगे

भारतीय संस्कृति के प्राण मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम

– स्वामी धर्मबन्धु

Alexander the Great के राजदूत मैगस्थनीज ने अपनी पुस्तक इण्डिका में भारत के प्रधानमंत्री के विषय में अपने अनुभव का उल्लेख करते हुए इस प्रकार लिखा है– हमने भारतवर्ष का भ्रमण करते समय यह देखा कि यहाँ के लोग अपने घरों में ताले नहीं लगाते हैं। अपने कीमती सामान व आभूषण गाँव के प्रमुख या मुखिया के पास जमा करा देते हैं और आवश्यकता पड़ने पर वापस ले लेते हैं। संपूर्ण देश में नि:शुल्क शिक्षा और चिकित्सा की अद्भुत व्यवस्था है। भुखमरी, निर्धनता और अराजकता लेशमात्र भी दिखाई नहीं दी। इतना सुव्यवस्थित शासन प्रबन्ध देखकर भारत के प्रधानमंत्री से मिलने की मन में उत्कंठा प्रगट हुई। हम पाटिलिपुत्र गए और प्रधानमंत्री से मिलने के लिए अनुरोध किया, सायंकाल का समय सुनिश्चित हुआ। दिनभर चिन्तन करके उनसे पूछने के लिए हमने अनेक प्रश्न तैयार किए, मुलाकात के समय आचार्य चाणक्य ने मुझसे पूछा, आपको राज्य सम्बन्धित वार्तालाप करना है या व्यक्तिगत? हमने कहा निजी प्रश्न हैं, यह सुनते ही आचार्य के कक्ष में जो मसाल जल रहा था उसको उन्होंने बुझा दिया और दूसरा मसाल जलाया, तत्पश्चात् हमने प्रश्न किया कि आपने इस मसाल को बुझाकर दूसरा मसाल क्यूँ जलाया? उत्तर में प्रधानमंत्री ने कहा कि जब आप इस कक्ष में नहीं थे तो हम शासन सम्बन्धित कार्य कर रहे थे, अब हमें आपसे निजी विषय पर चर्चा करनी है इसलिए सरकारी मसाल को बुझाकर अपना निजी मसाल जलाया है। मेगस्थनीज ने आश्चर्यचकित होकर अपने सभी प्रश्न फाड़ दिये और बोला–हमारे सभी प्रश्नों का उत्तर मिल गया।

श्रेष्ठ शासन व्यवस्था का आधार उत्तम राजनीति है परन्तु भारत में पढे लिखे अच्छे लोग राजनीति से घृणा यानी नफरत करते हैं ऐसे लोगों के लिए जर्मनी के Bertolt Brecht ने कहा था कि–

The worst illiterate is the political illiterate, he doesn't hear, doesn't speak nor participates in the political events. He doesn't know the cost of life, the price of the bean, of the flour, of the fish, of the rent, of the shoes and of the medicine, all depends on political decisions. The political illiterate is so stupid that he is proud and swells his chest syaing that he hates politics. The imbecile doesn't know that from his political ignorance is born the prostitute, the abandoned child and the worst thieves of all, the bad politician, corrupted flunky of the national and multinational companies.

अर्थात् बर्टोल्ट ब्रेख्त कहता है कि–

सबसे बड़ा नासमझ वह है जिसे राजनीतिक समझ नहीं है, वह न तो कुछ सुनता है, न ही बोलता है और न ही राजनीतिक कार्यक्रमों में भाग लेता है। वह दाल की कीमत, मछली की, किराए की, जूतों की और दवाई की कीमत नहीं जानता है, यह सब राजनीतिक निर्णयों पर निर्भर करता है। राजनीतिक अनपढ़ इतना मूर्ख है कि वह गर्व करता है और यह कहते हुए अपनी छाती पीटता है कि उसे राजनीति से नफरत है। इस मूर्ख को नहीं पता है कि उनकी राजनीतिक अज्ञानता से वेश्या, परित्यक्त बच्चे और सबसे बुरे चोर, बुरे राजनेता, राष्ट्रीय और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के भ्रष्ट स्वभाव पैदा हुए हैं।

स्मरण रहे! ये सभी अराजकताएँ सज्जनों की निष्क्रियता का परिणाम है। इतिहास साक्षी है राष्ट्र को जितना नुकसान आततायियों से नहीं हुआ उससे ज्यादा सज्जनों की उदासीनता से हुआ है। वैदिक शास्त्र के अनुसार राष्ट्र का शासक त्यागी, तपस्वी और गृहस्थी होना चाहिए क्योंकि गृहस्थी ही पारिवारिक सम्बन्धों और उनके द्वारा प्राप्त कष्टों से जो अनुभव प्राप्त करता है, उसी अनुभवों के द्वारा नागरिकों से पुत्रवत प्रेम और उनके प्रति

कल्याण की भावना रख सकता है और पड़ोसी राष्ट्रों से प्रगाढ़ सम्बन्ध भी प्रस्थापित करने में सफलता प्राप्त कर सकता है। अत: गृहस्थ विहीन शासक राष्ट्र के लिए अशुभ होता है। वैदिक इतिहास के अनुसार भगवान मनु से लेकर पृथ्वीराज चौहान तक सभी शासक गृहस्थी ही हुए अस्तु।

अत: हमारे अभिप्राय के अनुसार जब राजनेता धार्मिक नेता झोपड़ी में यानी सादगी, सदाचार और सावधानीपूर्वक अपने कर्तव्य का निर्वाह करते हैं तो प्रजा बिल्डिंगों में रहती है, और अपने आपको सुरक्षित महसूस करती है। परन्तु जब राजनेता और धार्मिक नेता महलों में रहते हैं यानी असंयमित और अमर्यादित जीवन जीते हैं, तो प्रजा झोंपड़ी अर्थात् गरीबी, अशिक्षा और अराजकता इत्यादि का शिकार होती है। इन सभी चुनौतियों और इनके समाधान के लिए उत्तम राज्य व्यवस्था का होना अनिवार्य है, सर्वश्रेष्ठ शासन व्यवस्था को ही भारतवर्ष में रामराज्य की उपमा से सम्बोधित किया जाता है।

भाग-3

राम राज्य यानी उत्तम राज्य व्यवस्था का उपाय अनेक शास्त्रों में इस प्रकार वर्णित है :-

(क) यजुर्वेद के अन्तर्गत आदर्श राष्ट्र के निर्माण के लिए दस सिद्धान्त निर्धारित किए गए हैं। जो इस प्रकार हैं।

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामाराष्ट्रे राजन्य: शूरऽ इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढाऽनड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठा: सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे न: पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो नऽ ओषधय: पच्यन्तां योगक्षेमो न:कल्पताम्।। यजुर्वेद 22.22

1. ब्रह्मन् :- हे परमेश्वर! हमारे राष्ट्र में ब्राह्मण यानी शिक्षक, वैज्ञानिक टेक्नोक्रेट और शोधकर्ता इत्यादि ज्ञान दीप्ति से प्रकाशित हों जिससे ये लोग राष्ट्र के अन्तर्गत विद्यमान अज्ञान, अन्धकार और अन्धविश्वास आदि को मिटाकर राष्ट्र के लिए सत्य, धर्म, न्याय और उन्नति का मार्ग प्रशस्त कर सकें।

2. क्षत्रिय :- अर्थात् राष्ट्र का सैनिकीकरण हो, प्रत्येक नागरिक को अपने जिम्मेदारियों का एहसास हो, राष्ट्र की सुरक्षा का उत्तरदायित्व प्रत्येक नागरिक का है। Everyone is accountable all the time. इसके अतिरिक्त राष्ट्र की सशस्त्र सेनाएँ अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित रहे और उनका उपयोग करने में विधिवत् प्रकार से निपुण भी हों। शत्रुओं का निर्मूल विनाश करने वाले तेजस्वी और पराक्रमी सैनिक हों, राष्ट्र को आन्तरिक और बाहरी सुरक्षा से सुनिश्चित करने वाले क्षत्रिय अर्थात् योद्धा, कमाण्डर महारथी हों।

3. अधिकतम दूध देने वाले गौ आदि पशु हों, क्योंकि दूध और उनसे बने पदार्थों के उपयोग से नागरिकों का स्वास्थ, हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ठ हो सके, पशुओं के दूध, औषधियों और फलों के रस का सेवन करने से मनुष्य प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति करता है।

4. अनड्वान :- सामान ढोने वाले संसाधन सुदृढ़ तथा सुव्यवस्थित हों।

5. आशु :- अर्थात् यातायात के संसाधन और युद्ध क्षेत्र के उपकरण जैसे विमान, जहाज, ट्रक, बस, ट्रेन इत्यादि शीघ्रगामी यानी तीव्रगति से चलने वाले हों।

6. योषा :- अर्थात् राष्ट्र का आधार नारी है इसलिए स्त्रियाँ सुशिक्षित और संस्कारित हों।

7. युवा :- राष्ट्र के युवक और युवतियों में परस्पर सम्पर्क, संवाद और सम्बन्ध प्रस्थापित करने के लिए निरंतर कार्यक्रम आयोजित होते रहें, युवक तथा युवतियाँ अपने शारीरिक, मानसिक और आत्मिक क्षमताओं को विकसित करने के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहें और राष्ट्र की समस्याओं का अवलोकन करें एवं भविष्य की चुनौतियों के लिए अपने आपको तैयार करें।

8. पर्जन्य :- समय के अनुकूल वर्षा हो उसके लिए प्राकृतिक पर्यावरण को सुरक्षित रखना, वातावरण को प्रदूषित न करना। जिससे स्वच्छ वायु, जल, अन्न और औषधि पर प्रत्येक नागरिक का समान रूप से अधिकार हो सके।

9. ओषधय :- फल और औषधि का उत्पादन पर्याप्त मात्रा में हो, मानव जीवन की आवश्यकताओं की

पूर्ति के लिए संसाधनों का उत्पाद और उनका उपयोग समुचित मात्रा में हो।

10. योग-क्षेम :- अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति का नाम योग है और जो वस्तु प्राप्त हो चुकी है उसकी रक्षा करने का नाम क्षेम है। इसका तात्पर्य यह है कि राष्ट्र की आवश्यकताओं की पूर्ति सुगमतापूर्वक हो। आदर्श राष्ट्र के लिए ये दस सिद्धान्त अनुकरणीय हैं।

(ख) अथर्ववेद के अन्तर्गत राष्ट्र को सुदृढ़ तथा सुव्यवस्थित करने के लिए नागरिकों के अन्दर आठ गुण विकसित करने के लिए निर्देश दिये हैं :-

1. सत्यं :- जिस कार्य को करने से प्राणियों का अत्यधिक कल्याण हो वही सत्य है।

2. वृहत् :- महत्त्वाकांक्षा अर्थात् व्यक्ति को प्रगतिशील मानसिकता को रखना चाहिए और रूढ़िवादिता से मुक्त होने के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

3. ऋतं :- नागरिकों के मन और मस्तिष्क में राष्ट्रीय नियम और कानून के प्रति आस्था तथा विश्वास होना चाहिए और उसके अनुसार आचरण व्यवहार करना चाहिए।

4. उग्रं :- अर्थात् नागरिक को ओज, तेज, वीरता और स्वाभिमान से परिपूर्ण होना चाहिए।

5. दीक्षा :- व्रत यानी नियम का पालन करें और कानून का उल्लंघन न करें।

6. तप :- नागरिकों की जीवनशैली भोगविलासिता, लोभ-लालच तथा प्रलोभनों से रहित और तपस्वी हो।

7. ब्रह्म :- वे लोग ईश्वर में विश्वास रखने वाले हों।

8. यज्ञं :- उन लोगों का जीवन परोपकारी यानी परस्पर सहयोग तथा एक दूसरे के प्रति यथायोग्य सम्मान और वैचारिक, मानसिक और आत्मिक रूप से मैत्रिपूर्ण संगठित जीवनशैली हो, जिस राष्ट्र के नागरिक उपरोक्त गुणों से सम्पन्न होंगे वह राष्ट्र अक्षुण्ण तथा सुरक्षित और प्रगतिशील रहेगा।

(ग) भगवान श्रीराम के आदर्शों के अनुरूप राज्य का वर्णन बाल्मीकि रामायण अयोध्या काण्ड सर्ग 70 श्लोक 3 से 54 तक में इस प्रकार किया गया है।

1. सम्मान :- शासक अपने रक्षकों, कर्मचारियों, वृद्धों, शिक्षकों, वैज्ञानिकों, चिकित्सकों, अर्थशास्त्रियों, कूटनीतिज्ञों और सुरक्षा अधिकारियों इत्यादि का सहृदयता पूर्वक सम्मान करे।

2. मंत्री परिषद की योग्यता :- शासक को अपने समान विश्वसनीय, कुशल राजनीतिज्ञ, लोभ-लालच से रहित, प्रामाणिक, श्रेष्ठ तथा प्रतिष्ठित धर्म-अर्थ-काम से सुपरिचित और चरित्रवान तथा मानसिक स्थिति यानी इशारों को समझने वाले व्यक्ति को मंत्री बनाना चाहिए। क्योंकि गुप्त मंत्रणा को धारण करने वाले नीतिवान मंत्रियों द्वारा ही शासक को सफलता प्राप्त होती हैं।

3. निर्णय :- शासक को हमेशा अप्रत्याशित Unpredictable होना चाहिए, उसे किसी भी योजना का निर्णय न अकेले करना चाहिए और न अधिक लोगों से विचार-विमर्श करके, उन्हें निरंतर सावधान रहना चाहिए कि उनके द्वारा लिए जाने वाले निर्णय को क्रियान्वित होने से पूर्व विरोधी लोग तर्क या युक्ति से न जान सकें परन्तु उसके मंत्री और अधिकारी दूसरों के गुप्त रहस्य को अवश्य जान सकें, शासक श्रेष्ठ योजना को अपने तक ही सीमित रखे यदि योजना प्रचारित हो गयी तो विरोधी ताकतें प्रभावी हो सकती हैं।

4. शासक की सावधानी :- शासक को नागरिकों पर अत्यधिक कठोरतापूर्वक शासन नहीं करना चाहिए जिससे कि वे शासक या उसके मंत्रियों का अपमान करने लग जाएँ। जिस प्रकार स्त्रियाँ दुराचारी पुरुषों का तिरस्कार करती हैं, श्रेष्ठ पुरुष कर्महीन व्यक्तियों का अनादर करते हैं उसी प्रकार अधिक कर लेने वाले शासक से प्रजा घृणा यानी नफरत करती है। जो शासक अपने संगठन में साम, दाम, दण्ड, भेद, विग्रह और संधि इत्यादि नीतियों का प्रयोग करने वाले मंत्री को, विद्वेषी वैद्य यानी शत्रुता का भाव रखने वाले अविश्वस्त चिकित्सक को, सज्जनों पर दोषारोपण करने वाले कर्मचारी और शासन यानी राज्य की इच्छा रखने वाले सेनापति को नहीं मारता तो आगे चलकर उन्हीं लोगों के द्वारा वह स्वयं

मारा जाता है अत: शासक को ऐसे लोगों से सावधान रहना चाहिए। शासक द्वारा पराजित और अपमानित व्यक्ति यदि क्षमा याचना करके शरण में आ जाये तो उसे कमजोर समझकर उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए अपितु उससे सावधान रहे। शासक को तथाकथित बुद्धिजीवियों और नास्तिकों की संगति नहीं करनी चाहिये क्योंकि ये धूर्त पापी लोग प्रजा को गुमराह करके उसे दिग्भ्रमित करने में कुशल होते हैं।

5. **सेनाध्यक्ष की नियुक्ति :-** सेनापति को कुशल, बुद्धिमान, शूर, पराक्रमी, धैर्यशाली, पवित्र यानी ईमानदार, कुलीन यानी चरित्रवान, राष्ट्रभक्त, स्वामीभक्त और कार्य कुशल व्यक्ति होना चाहिए। सैनिकों को उनके कार्य के अनुरूप भोजन और वेतन पर्याप्त मात्रा में समय के अनुसार मिलना चाहिए, वेतन समय पर न मिलने से कर्मचारी सरकार की निन्दा करने लगते हैं इस असंतोष के कारण अनर्थ की सम्भावना प्रबल हो जाती है। स्वदेश में उत्पन्न व्यक्ति जो शारीरिक, मानसिक और आत्मिक रूप से सक्षम हो, और राष्ट्र हित के लिए अपने प्राण न्योछावर करने के लिए निरंतर उद्यत रहता हो ऐसे व्यक्ति को सेना में भर्ती करना चाहिए।

6. **गुप्तचर :-** स्वदेश में उत्पन्न, दूसरों के अभिप्राय को बिना अभिव्यक्ति के जानने वाले, प्रत्युत्पन्नमति यानी कुशाग्र बुद्धिमान, यथोक्तवादी = संदेश को न अधिक विस्तार से न अधिक संक्षेप में यानी ठीक-ठीक से देने वाला हो। शासक इस प्रकार के व्यक्ति की गुप्तचर संस्था में नियुक्ति करे।

शासन को सुदृढ़ तथा सुव्यवस्थित बनाने के लिए गुप्तचरों द्वारा मंत्री, पुरोहित, (बुद्धिजीवी शिक्षक, वैज्ञानिक और अर्थशास्त्री शोध कर्त्ता आदि) सेना प्रमुख, सीमा पर नियुक्त कर्मचारी, आन्तरिक सुरक्षा अधिकारी, कारावास अधिकारी, पुलिस अधिकारी, उच्च पदों पर नियुक्त पदाधिकारी, वकील, धार्मिक प्रमुख, राज्यों के विशिष्ट गणमान्य, जज, वनाध्यक्ष, कर गृहीता Incometax officers, सस्य अर्थात् (NGO, Social activist and journalist etc.) दूसरें देशों के इन सभी वर्गों की गतिविधियों पर निगरानी रखनी चाहिए और अपने देश के अन्तर्गत मंत्री और पुरोहित, (बुद्धिजीवी शिक्षक, वैज्ञानिक और अर्थशास्त्री शोध कर्त्ता आदि) को छोड़कर सभी वर्गों की गतिविधियों पर निगरानी रखनी चाहिए।

7. **शासक का परम कर्तव्य :-** शासक को पशुपालन, कृषि व्यवसाय को उन्नतिशील बनाने और धनोपार्जन के स्रोतों पर विशेष ध्यान देना चाहिए। क्योंकि राष्ट्र की उन्नति का मूल स्रोत आर्थिक समृद्धि ही है। धन के बिना शिक्षा, सेना, सुरक्षा, चिकित्सा संसाधन इत्यादि की उपलब्धता असम्भव है। शासक का परम उद्देश्य यह है कि नागरिकों के हितों की रक्षा धर्मपूर्वक ईमानदारी से करे और उनके अरिष्टों यानी व्यवधानों को दूर करने के लिए अथक प्रयत्न करे, उनके भरण-पोषण अर्थात् भोजन, वस्त्र, शिक्षा, चिकित्सा और आवास इत्यादि का समुचित प्रबंध करे। शासक राष्ट्रीय प्राकृतिक संसाधनों को सुरक्षित रखे और जन कल्याण के लिए उनका समुचित उपयोग करे। वह प्रजा से निरंतर संवाद प्रस्थापित करे, उसके कर्मचारी न तो उससे निर्भय रहें और न ही भयभीत रहें दोनों ही स्थितियाँ ठीक नहीं है अर्थात् कर्मचारियों के साथ मध्यम प्रकार का व्यवहार ही उचित होता है। वह अपने राष्ट्र को धन धान्य से समृद्ध, अस्त्र-शस्त्र से थल, जल और नभ को सुदृढ़ रखे। वह नागरिकों को आश्वस्त करे की राष्ट्र की आय अधिकतम और खर्च न्यूनतम होगा। वह कुपात्रों को आर्थिक सहयोग न दे, राष्ट्रीय सम्पत्ति को शिक्षा, चिकित्सा, सेना, सुरक्षा आदि जनोपयोगी कार्यों पर खर्च करे। शासक को यह ध्यान देना चाहिए कि विशुद्धात्मा, पवित्र और श्रेष्ठ लोगों पर दोषारोपण के द्वारा उन्हें दण्डित न होने दे और अन्यायी, अत्याचारी और अराजक व्यक्ति दण्ड से वंचित न रहे, उसे निरंतर प्रयत्नशील रहना चाहिए कि कहीं उसके कर्मचारी लोभ-लालच और प्रभाव के कारण किसी के साथ अन्याय तो नहीं कर रहे। क्योंकि निरपराधों को दण्ड देने के कारण जो उनके आँखों से आँसू गिरते हैं वह भोग विलासिता रूपी साम्राज्य को नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं। शासक वृद्ध, बालक,

शिक्षक, चिकित्सक और उपेक्षित लोगों को उनके अभीष्ट यानी आवश्यक वस्तु को उपलब्ध कराए, उनके साथ स्नेह पूर्वक व्यवहार करे और आश्वासन रूपी वचन कहकर उन्हें प्रसन्न करे। शासक को अपनी दिनचर्या यानी नित्यकर्म समयानुसार करना चाहिये। शासक को नास्तिकता, असत्य भाषण, क्रोध, प्रमाद, दीर्घसूत्रता (टालमटोल) सज्जनों से न मिलना, आलस्य, इन्द्रियों की परतंत्रता, मंत्रियों की अवहेलना करके अकेले ही राज्य सम्बन्धी समस्याओं पर विचार करना, अशुभ चिंतकों यानी उल्टी बात समझने वाले मूर्खों से परामर्श करना, निश्चित किए हुए कार्यों को प्रारम्भ न करना, रहस्यों को प्रकट कर देना, श्रेष्ठ कर्मों का त्याग, उत्तेजित होना अर्थात् अनेक शत्रुओं पर एक साथ आक्रमण कर देना, इन चौदह दोषों का परित्याग अतिशीघ्र करना चाहिए। शासक को राजनीति, अर्थनीति, सुरक्षानीति और आध्यात्मिकता इत्यादि का विधिवत ज्ञान होना चाहिए। यदि किसी कारण यह ज्ञान नहीं है तो इन विषयों के पारंगत विद्वानों से परामर्श करना चाहिए। शासक मंत्रियों के साथ सामूहिक रूप से और अलग-अलग से भी उनका अभिप्राय जानने की कोशिश करे।

(घ) महाभारत युद्ध भारतवर्ष की समृद्धि, संप्रभुता, एकता और चारित्रिक सर्वनाश का प्रतीक है। इस युद्ध और अपने द्वारा किए गये गलतियों से अनुभव प्राप्त करके पितामह भीष्म ने महाभारत के अन्तर्गत शान्तिपर्व में शासक के लिए कर्तव्य निर्देशित किए, जो इस प्रकार हैं। शासक का प्रमुख कर्तव्य यह है कि वह अपने राजगद्दी से प्रेम न करे अपितु अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम करे, उसे सदैव स्मरण रखना चाहिए कि देश से बड़ा कोई नहीं होता न राजगद्दी, न उसका परिवार, राष्ट्र हितों का ध्यान न देकर व्यक्तिगत स्वार्थ महत्त्वाकांक्षा और अपने परिवार का ध्यान देना राष्ट्रद्रोह होता है। शासक को ध्यान रखना चाहिए कि-देश के हितों से बढ़कर राजा का हित नहीं हो सकता क्योंकि राजा देश के लिए होता है, देश राजा के लिए नहीं।

पितामह भीष्म जी अपने ज्ञान और अनुभव के आधार पर युधिष्ठिर को उपदेश देते हैं कि-वो शासक अपने देश के लिए कभी शुभ नहीं होता जो अपने देश की आर्थिक और सामाजिक रोगों के लिए अतीत यानी पुराने शासक को जिम्मेदार ठहराता है। यदि अतीत ने तुमको एक निर्बल आर्थिक सामाजिक ढाँचा दिया है तो उसे सुधारो उसे बदलो, क्योंकि अतीत तो यूँ भी कभी वर्तमान की कसौटी पर खरा नहीं उतरता, यदि अतीत में एक स्वस्थ परम्परा और देश को प्रगति के मार्ग पर ले जाने की क्षमता होती तो यह परिवर्तन ही क्यूँ होता? वे आगे कहते हैं कि-किसी भी समाज की कुशलता की सही कसौटी यह है कि वहाँ नारी जाति का मान होता है या अपमान।

उनके अनुसार धर्म विधियों और औपचारिकताओं के अधीन नहीं होता है। धर्म अपने कर्तव्यों और दूसरे के अधिकारों का संतुलन की अवस्था है, यही राजधर्म भी है। शासक का दायित्व नागरिक के दायित्व से अधिक होता है। इसलिए उसे अपने कर्तव्यों के प्रति सजग और सावधान रहना चाहिए। अतः शासक के हृदय में अपने देश के प्रति अनुपम प्रेम होना चाहिए और उसके मन तथा मस्तिष्क में यह भावना होनी चाहिए कि-देश की सीमाएँ माता के वस्त्र की भाँति पवित्र होती हैं। जिस प्रकार हम माता के वस्त्र का विभाजन नहीं कर सकते उसी प्रकार हमें देश का विभाजन करने का कोई नैतिक अधिकार नहीं है। यदि कोई परिस्थिति देश को विभाजन की तरफ ले जाती हो तो युद्ध मैदान में आ जाओ परन्तु देश का विभाजन मत होने दो। यदि देश के सभी नागरिक अपने कर्तव्य का पालन करने लग जाएँ तो किसी को भी अपना अधिकार किसी के पास से माँगना नहीं पड़ेगा।

(ङ) भारतवर्ष के अन्तर्गत 350BC-227BC समय काल के दौरान पाटिलीपुत्र राज्य में सुप्रसिद्ध राजनीति और अर्थशास्त्र के विद्वान शिक्षक आचार्य चणक के पुत्र विष्णुगुप्त हुए, जो आगे चलकर चाणक्य और कौटिल्य के नाम से सुविख्यात हुए। मगध राज्य के महामंत्री शकटार के मित्र आचार्य चणक की कर्तव्यनिष्ठता और सत्य

परायणता से भयभीत होकर वहाँ के शासक धनानन्द ने उनकी हत्या कर दी। आचार्य चणक की मृत्यु के शोक के कारण और निर्धनता से ग्रस्त और दु:खी उनकी पत्नी भी अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकी। अत: निर्धन और असहाय बालक विष्णुगुप्त ने पाटिलिपुत्र का परित्याग करके भारत के सुप्रसिद्ध शिक्षण संस्थान तक्षशिला में प्रवेश लिया और राजनीति और अर्थशास्त्र के अद्वितीय विद्वान बन गये। उसी बीच 4 जून 327BC में ग्रीक के सम्राट सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण कर दिया, और उसने तक्षशिला के शासक आम्भीराज से संधि करके और केकय राज्य के शासक पर्वतेश्वर (पोरस) 326BC को पराजित करके भारत के लगभग एक तिहाई भू-भाग पर, अपना अधिकार कर लिया। पराजित और अपमानित भारत की दुर्दुशा से दु:खी तथा पीड़ित होकर निर्धन और अशिक्षित चन्द्रगुप्त नामक बालक के अन्दर उनके गुण और कौशल को पहचान कर आचार्य चाणक्य ने उसे उसके मामा से 5000 कार्षापण में खरीद लिया तदुपरान्त उसे शिक्षित और दीक्षित करके एक महान योद्धा और विद्वान बनाया। आचार्य चाणक्य ने अपने बौद्धिक कौशल के द्वारा चन्द्रगुप्त के नेतृत्व में सिकन्दर की सेना को परास्त किया और भारतवर्ष को स्वतंत्र करके मौर्य साम्राज्य की स्थापना की और चन्द्रगुप्त मौर्य को मगध का सम्राट नियुक्त किया। उस राज्य की शासन प्रणाली कैसी थी उसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार प्रस्तुत है। अपने समय के इस पृथिवी के सबसे बुद्धिमान मनीषी, चिन्तक, कर्मनिष्ठ तथा कुशल राजनीतिज्ञ और महान अर्थशास्त्री आचार्य चाणक्य ने **कौटिल्य अर्थशास्त्र** में मनुष्य को सुखी रहने का उपाय धर्म बताया है। धर्म के लिए धन यानी अर्थ की आवश्यकता का होना नितान्त रूप से जरूरी समझा है। आचार्य चाणक्य अज्ञानता और निर्धनता को साक्षात नरक मानते थे। उनका उद्घोष होता था कि- निर्धन, गरीब और अशिक्षित परिवार में पैदा होना कोई अपराध नहीं है परन्तु निर्धन और अशिक्षित होकर मरना इस पृथिवी का सबसे भयानक पाप है। अर्थ के लिए राज्य का होना और राज्य की शासन व्यवस्था को सुदृढ़ता का आधार शासक और नागरिक के लिए इन्द्रियों का संयम बताया है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने नागरिकों के चरित्र निर्माण तथा उनके शारीरिक, मानसिक और आत्मिक विकास के लिए मूल्य आधारित शिक्षा व्यवस्था का प्रबंध किया था। राज्य के संसाधनों का सभी वर्गों के बीच समुचित रूप से उचित वितरण प्रणाली के द्वारा उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति, सभी नागरिकों को समान रूप से न्याय, सुरक्षा, चिकित्सा और उनकी योग्यता के अनुसार कार्य तथा कर्तव्यों का निर्धारण के लिए विशेष महत्त्व दिया था। इसके अतिरिक्त स्त्रियों की शासन व्यवस्था में भागीदारी और बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए अत्यधिक प्रोत्साहन देते थे। आचार्य चाणक्य व्यापार में सुचिता, ईमानदारी, कुशलता युक्त कृषि तथा पशुपालन में वृद्धि, राज्य में आवश्यक वस्तुओं तथा सैन्य उपकरणों का निर्माण, प्राकृतिक संसाधनों का उचित उपयोग और सुदृढ़ कर (Tax) प्रणाली व्यवस्था को राज्य की उन्नति और प्रगति के लिए नितान्त आवश्यक समझते थे। आचार्य जी नागरिकों में श्रेष्ठ आचरण, राज्य के कर्मचारियों में कर्तव्यनिष्ठता का भाव, सैनिकों में विवेक तथा पराक्रम इसके अलावा सशक्त, जागरूक और सावधान गुप्तचर व्यवस्था को राष्ट्र की सुरक्षा के लिए अनिवार्य समझते थे। आचार्य जी के अर्थशास्त्र में राष्ट्रीय एकता के उपाय तथा राष्ट्र की समृद्धि के लिए धनोपार्जन के स्रोत और देशवासियों में प्रेम और सौहार्द्र उत्पन्न करने के लिए नैतिक आदर्श के साथ-साथ अपराधियों के लिए कठोरतम दण्डविधान का भी उत्कृष्ट वर्णन है। अत: कौटिल्य अर्थशास्त्र के अध्ययन के उपरान्त हम विश्वास-पूर्वक कह सकते हैं कि यदि भारतवर्ष के लोगों ने आचार्य जी का अर्थशास्त्र पढ़कर आत्मसात् किया होता और उनके नीतियों तथा सिद्धान्तों का अनुसरण किया होता तो यह पुण्यभूमि कभी पराधीन यानी गुलाम नहीं होती और न ही इसका विभाजन होता अस्तु।

(क्रमश:)

दीपावली

– धर्मवीर

भगवान राम माता-महारानी कैकेयी के वचनों से बंधे पिता-महाराज दशरथ की आज्ञा से चौदह वर्ष की वनवास अवधि को पूरा कर अयोध्या लौटे। वनवास अवधि में रावण सहित अनेक राक्षसों को मारकर न केवल तपस्वी ऋषि-मुनियों को राहत प्रदान की, आम जन को भी सुरक्षित किया। पिता के वचनों की पूर्ति हेतु इतने लम्बे समय तक साधन रहित होते हुए भी वनों में वास किया, वनवास अवधि में भी अपने क्षात्रत्व के दायित्व का पालन करते हुए अपनी मर्यादा को निभाया। इसके बाद अयोध्या लौटे तो अयोध्या वासियों का खुशियों से झूम-उठना स्वाभाविक ही था। ऐसी खुशी की झूम ही दीपावली है। ऐसा नहीं था कि अयोध्या राम के बिना असुरक्षित थी या अयोध्या की जनता के लिए कोई अभाव था क्योंकि भरत और शत्रुघ्न की छाया में अयोध्या सुरक्षित भी थी और अयोध्या में कोई अभाव भी नहीं था। कमी थी तो मात्र एक कि राम नहीं थे। अत: जब राम आ जाएँ तो दीपावली तो मनेगी ही।

दीपावली मनाने का कारण था। आज तो हम उस दीपावली की याद में ही दीपावली मना रहे हैं। आज कहाँ राम लौट आया? कहाँ रावण मारा गया? चारों तरफ असुरों की बाढ-सी आ रही है। समाचार पत्र अनाचार-दुराचार के समाचारों से ही भरे पड़े रहते हैं। जिन पर जिम्मेवारी है ऐसे अनाचारों को रोकने की और अनाचारियों को सजा देने की वे अपनी सियासी रोटियाँ तो इनसे अवश्य सेकते हैं, पर वे भरत और शत्रुघ्न नहीं हैं। न बहु-बेटियाँ सुरक्षित हैं, न धन सम्पदा सुरक्षित है। तब क्या औचित्य है दीपावली मनाने का? मनाने के तरीके में भी न स्वच्छता है, न सात्विकता। प्रदूषण बढाकर बीमारियों का आधार ही निर्मित कर रहे हैं।

आज लोकतंत्र की व्यवस्था है। लोकतंत्र एक अति उत्तम शासन व्यवस्था है लेकिन उनके लिए ही जहाँ का लोक अनुशासित, मर्यादित, राष्ट्रप्रेमी और सेवाभावी हो। दुर्भाग्य वश आज भारत में इसकी पूरी कमी है। इसलिए हमारा लोकतंत्र सियासतदारों, दलगत स्वार्थियों और स्व केन्द्रित लोगों की गिरफ्त में आ गया है। तब इस उत्तम शासन प्रणाली का भी दुरुपयोग ही होता नजर आता है। तो कैसे खुशियों से नाच उठें और कैसे दीपावली मनावें?

आज स्थिति विपरीत है, परिस्थितियाँ प्रतिकूल हैं। तो क्या हम यही रोना रोते रहें? क्या हमारा कोई दायित्व नहीं बनता? बनता है। हाँ, हम पूरे राष्ट्र की स्थिति को तो व्यवस्थित करने में सक्षम नहीं हैं, पर क्या हमने अपने आप को तो व्यवस्थित कर लिया है? जिन दोषों की हम चर्चा कर रहे हैं, क्या हमने, नहीं मैंने, अपने आपको तो उन दोषों से मुक्त कर लिया है? काम, क्रोध, लोभ,मोह, मद, मत्सर इन षट् दोषों में से क्या किसी दोष से हम मुक्त हो गए हैं? अगर गहराई से विचार करें, अपने अन्तर में झांकें तो पता चलेगा कि हमारी क्या स्थिति है। हम स्वयं हमारी स्थिति सुधार लें तो राष्ट्र की एक इकाई तो सुधरी। ऐसे ही एक-एक इकाई से ही समाज बनता है और एक-एक इकाई से ही राष्ट्र बनता है। तो राष्ट्र निर्माण में हमारे दायित्व को समझें और उसे निभाएँ, यही राष्ट्र-निर्माण का मार्ग है।

हम आत्मावलोकन करें और निरंतर अथक प्रयत्नों से अपने एक-एक दोष को हमारे जीवन से दूर करें। अपने दोष रूपी इन असुरों को मारना हमारे लिए राम का राक्षसों को मारना है। हमारे दोषों को मारने से जीवन में जो निर्मलता आती है, वही राम का घर लौटना है। यदि साधनारत रहकर हम अपने राम को जागृत कर सकें तो अवसर बनता है खुशियों का और तभी दीपावली मनाना भी सार्थक सिद्ध होता है। तब खुशियों की फूलझड़ियाँ हमारे अन्दर से छूटेंगी। राम के जगने पर ही रोम-रोम में सुख, शान्ति व्याप्त होगी। तो संकल्प लें, हम अपने स्वयं के असुरत्व का संहार करने अभी से जुट जाएंगे और निरंतर लगे रहेंगे। वही हमारी दीपावली होगी।

विचार-क्रान्ति

– गजेन्द्रसिंह आऊ

आज अधिकांश लोग विचार करते हैं,-मुझे बड़ा बनना है, मुझे सुखी बनना है, मुझे विकास करना है आदि-आदि। इस प्रकार के विचार जो पढे-लिखे लोग हैं, उनमें तो अधिकता से आते हैं लेकिन जो अनपढ हैं और गाँव के वातावरण में रहते हैं, उनमें कम लोगों में आते हैं। इन विचारों के अनुसार जो शहरी क्षेत्र व पढे-लिखे लोगों की कल्पना होती है, ग्रामीण और अनपढ लोगों की कल्पना वहाँ तक नहीं पहुँच पाती।

बचपन से ही माता-पिता के प्रोत्साहन या संगी साथियों की संगति के कारण कुछ बनने के विचार प्रारम्भ हो जाते हैं। इन विचारों से प्रभावित बच्चे पढाई पर पूरा ध्यान देते हैं। पढाई के बाद कैसे अपनी कल्पनाओं को साकार करना है, इस पर भी पूरा ध्यान ही नहीं देते, उसके लिये भरपूर प्रयास भी करते हैं। जब कमाने लग जाते हैं तो उस दिशा में भी अपना प्रयास दमदार करते हैं ताकि अधिक से अधिक सुविधाएँ जुटाने की व्यवस्था कर सकें।

जब शादी हो जाती है और घर में बच्चे आ जाते हैं तो अब तक जिन सुख-सुविधाओं के लिए अथक परिश्रम कर रहे थे, उनमें एक बिन्दु अतिरिक्त जुड़ जाता है कि मेरे बच्चे बड़े बनें, अधिक सुखी रहें, विकास की डगर पर इनके कदम बढते रहें। उत्तरदायित्व बढ जाता है तो और अधिक परिश्रम करना ही पड़ेगा। ध्यान बच्चों पर केन्द्रित हो गया। इनको अच्छी से अच्छी शिक्षा मिले, इसके लिये उपयुक्त विद्यालय में इनको पढाऊँ, इनकी योग्यता बढाने के लिये उचित कोचिंग आदि की व्यवस्था करूँ।

अपनी कल्पनाओं की पूर्ति करने हेतु व्यक्ति जी-तोड़ मेहनत करता है और करते-करते प्रोढता ही नहीं वद्धावस्था में प्रवेश कर लेता है। अब तक कहीं इधर-उधर ध्यान ही नहीं था, केवल स्वप्नों की पूर्ति में लगा रहा। अब चारों तरफ नजर जाती है, आस-पास के लोगों के साथ उठना-बैठना होता है तब थोड़ा विचार समाज का भी आने लगता है। और कुछ तो अब करने योग्य रहा नहीं, तब समाज के बीच ऊठ-बैठ रहे तो लोग मिलेंगे, सम्मान मिलेगा यह स्वप्न भी देख लेता है।

सुखी रहने के लिए अब तक जो भी प्रयास किए, वे सुविधाओं के साधन जुटाने के लिये ही थे। साधन खूब जुटा लिए पर क्या सुख मिला? साधन संग्रह के मार्ग पर बढने वालों को तृप्ति कभी नहीं मिलती। जितना संग्रह कर लिया, अब उसे सवाया करूँ, और अधिक करूँ यह चाह कभी पूरी नहीं होती और जीवन का मूल्यवान समय इसी कभी पूरी न होने वाली चाह की दौड़ में ही गुजर जाता है। बच्चों के तथाकथित भविष्य निर्माण की चाह में भी कुछ करने में कसर नहीं रखी, पर अब बच्चे भी पास में नहीं रहे। अपने बाल-बच्चों को लेकर वे अपने सपनों की दुनिया को सजाने में लग गये।

साधन सुविधा प्रदान करते हैं पर सुख (आनन्द) केवल साधन नहीं दे सकते। साधन के कारण मिली सुविधा को यदि हम सुख मानते हैं, तो वह साधन नहीं रहेगा, तब क्या दुखी ही रहना होगा? साधनों से सुख मिलता है, इस भ्रम में जीवन बीत जाता है। सुखी रहने के लिए हमने कभी इस बात पर ध्यान ही नहीं दिया कि साधनों के बिना भी लोग सुखी हैं। एक व्यक्ति वातानुकूलित भवन में रहकर भी गर्मी महसूस कर सकता है, पसीना-पसीना हो सकता है जबकि कोई पेड़ की छाया में बैठकर ही चैन की बंशी बजा रहा है तथा एक है जो दोपहरी में निनाण करते हुए तेजा गा रहा है। साधन हमारा समय बचा सकते हैं पर बचे हुए समय का सदुपयोग साधन नहीं सिखा सकते। फोन शीघ्रता से सम्पर्क करने में सहायता दे सकता है पर धैर्य और संयम की हानि होती है, उसकी पूर्ति करने में सक्षम नहीं है।

अत: जो हमको सुखी बना सके, वह बाहर नहीं, हमारे भीतर है। हमने बाहर की कमाई की पर भीतर की कमाई नहीं की। हम हमारे विचारों को बदलें। अपने दायित्व को निभाएँ और उसी को सुख मानें। हमारी मेहनत के बदले जो उपयुक्त था, वह भगवान ने हमें दिया। उसे ही भगवान का दिया प्रसाद मानकर, उसके अनुसार ही अपना जीवन बनाएँ। धन या पद प्राप्त करना ही बड़ा बनना नहीं है। अपने जीवन को निर्मल बनाना ही बड़ा बनना है और उसी में स्थायी सुख है। ऐसी विचार-क्रांति ही सुख देती है, वही अपेक्षित है।

दृश्य, दर्शक, द्रष्टा

– महिपालसिंह चूली

वर्तमान समय में संसार के लोगों के जीवन-चक्र के बारे में गहराई से देखा जाए तो चारों ओर तीन तरह के व्यक्तियों को देखा जा सकता है। पहले प्रकार के व्यक्ति का रूप है-दृश्य रूप। व्यक्ति अनेकों-अनेक तरह से प्रयास करता है दृश्य बनने की। उसकी इच्छा बस यही होती है कि लोग उसे देखें और देखते रह जाएँ। वह व्यक्ति चाहता है कि उसे दृश्य रूप में देखा जाए, सराहा जाए, उसकी प्रशंसा की जाए, उसे मान-सम्मान दिया जाए, उच्च पदों से सुशोभित किया जाए। अपनी इस दृश्य बनने की चाह को साकार रूप देने के लिए वह अनेक प्रकार के प्रयास करता है। इस दृश्य बनने के प्रयास में लगने पर मनुष्य व्यक्ति के रूप में खो जाता है। वह एक वस्तु बन जाता है। वह केवल मात्र सुन्दर दृश्य बनने की चाहत में जीता है। उसके सारे प्रयत्न इसीलिए होते हैं कि मैं लोगों को अच्छा कैसे लगूं, सुन्दर कैसे लगूं, श्रेष्ठ कैसे लगूं। श्रेष्ठ बनने की इच्छा नहीं होती, श्रेष्ठ बनने की इच्छा तो मनुष्य में होती है पर वह तो दृश्य बनने के चक्कर में मनुष्यत्व खो चुका है, वस्तु बन गया है। इसलिए मात्र श्रेष्ठ दिखना चाहता है। एक अच्छा दृश्य बनने के लिए वह कई प्रकार के आडम्बर करता है, पाखण्ड को धारण करता है। अपने ऊपर कई प्रकार के मुखौटे लगाकर घूमता रहता है ताकि लोग इस दृश्य को देखकर तालियाँ बजाएँ, मालाएँ पहनाएँ, जय-जयकार करें।

दूसरे प्रकार के लोग वे हैं जो दृश्य को देखने के लिये दर्शक रूप में होते हैं। दर्शक का मतलब है जिसकी दृष्टि, नजर दूसरे के ऊपर है। इसलिए जहाँ सुन्दर दृश्य दिखता है, वहाँ दर्शकों की भीड़ हो जाती है। दृश्य के बारे में प्रशंसा के पुल बांधे जाते हैं। जहाँ दृश्य सुन्दर नहीं है वहाँ आलोचनाओं के परचे पढे जाते हैं। नजर दूसरों पर ही है, स्वयं पर नहीं। उस दृश्य से दर्शक का कोई सम्बन्ध नहीं, मात्र देखना है। सिनेमाघर के दृश्यों में अनुभव किया जाए कि उस परदे पर मात्र छायाएँ हैं, भौतिक रूप से कुछ नहीं, लेकिन लोग बड़े ध्यानस्त होकर देखने में खो गए हैं, दर्शक जो ठहरे। अपनी बीमारी, अपना बुढापा भूलकर परदे पर आने वाली छायाओं में खो जाते हैं। संसार के अधिकांश मनुष्य इन दो श्रेणियों-दृश्य व दर्शक रूप में ही पाए जाते हैं। कुछ को दृश्य बनने की चाहत है तो कुछ लोग संसार में उपलब्ध ऐसे दृश्यों की छवि को देखने में ही अपने भाग्य की सराहना कर रहे हैं कि धन्य हो गए ऐसे श्रेष्ठ लोगों का दृश्य देखकर। बस उनकी जी हजूरी व चापलूसी करने में ही अपने अमूल्य जीवन को खोते जा रहे हैं।

तीसरे प्रकार के लोग विरले ही होते हैं। वे होते हैं द्रष्टा। द्रष्टा होने का अर्थ है अब दृश्य व दर्शक सब विदा हो गए। वह पर्दा जिस पर दृश्य देखा जा रहा था, वह नजर जो दृश्य देख रही थी, सब खाली हो गई। अब न कोई दृश्य है, न दर्शक है। अर्थात् जिनको न दृश्य बनने की चाह है, न दृश्य देखने की। न ऐसे विचार रहे, न शब्द रहे। न दिखाने के लिये कुछ बचा और न देखने को भी कुछ बचा। जो देखने वाला था उसने स्वयं अपने अन्दर डुबकी लगाई और द्रष्टा हो गया। जब हमारी दृष्टि से सभी दृश्य विदा हो जाते हैं, केवल हम ही रह जाते हैं, तब बस जाग्रति मात्र रह जाती है। उसे ही द्रष्टा कहते हैं।

तीनों प्रकार में भेद है। आम व्यक्ति के सारे प्रयत्न दिखाने के लिए ही रहते हैं। दृश्य बनने की होड लगी रहती है, पूरा जीवन इसी दौड़ में दौड़ते-दौड़ते व्यतीत कर देते हैं। कुछ लोग मात्र दर्शक हैं। भिन्न-भिन्न दृश्य देखते हैं। किसी को पसन्द करते हैं, किसी को नहीं। नजर बस दृश्यों पर ही टिकी रहती है, जीवन में स्वयं की ओर देखने का अवसर ही नहीं आ पाता। जो स्वयं के भीतर देखते हैं, जागरण हो जाता है, वे द्रष्टा बन जाते हैं। यही श्रेष्ठतम स्थिति है। यही मानव जीवन की चाह बने। हमारा अमूल्य जीवन इस श्रेष्ठतम स्थिति को प्राप्त करने में लगे, यही मानव जीवन की सार्थकता है।

विचार-सरिता

(नव पञ्चाशत् लहरी)

– विचारक

विचार सरिता की छयालीसवीं लहरी में वर्णित दृश्य और दर्शक की मूलत: कोई सत्ता नहीं है। क्योंकि जब वेदान्त सिद्धान्त के अनुसार दृश्य मिथ्या है तो उसका दर्शन करने वाला दर्शक सत्य कैसे हो सकता है। दृश्य और दर्शक वस्तु रूप से है ही नहीं, इस प्रकार दृढ़ भावना से जब चित्त सर्वथा क्षीण हो जाता है, तब उस सामान्यस्वरूप चेतन के होने की सिद्धि स्वत: घटित होती है। जब हमारा चेतन स्वरूप आत्मा समस्त दृश्य पदार्थों से रहित होकर ब्रह्म में विलीन हो जाता है, तब उसकी निराकार आकाश की भाँति अत्यन्त निर्मल चेतन-सत्ता सिद्ध होती है।

जब साधक संपूर्ण दृश्य-प्रपञ्च को अपने वास्तविक स्वरूप से स्वप्रकाशात्मक एकता करके सर्व दृश्य जगत परमात्मा ही है, ऐसा अनुभव करता है तब उसकी वह द्रष्टा तुर्यातीत पद के सदृश है, अत: यह सदेहमुक्त और विदेहमुक्त दोनों के लिये सदा समान है। यह दृष्टि ज्ञान से प्रादुर्भावित होती है, अत: यह केवल तुर्यातीत ज्ञानी महापुरुष को समाधिकाल व समाधि के व्युत्थान-अवस्था दोनों में होती है। लेकिन अज्ञानी के लिए यह कभी भी सम्भव नहीं। यह ब्रह्म-दृष्टि समस्त भयों का विनाश करने वाली है, इसलिए यह साधक के लिए परमवांछनीय है।

जहाँ से सारे सांसारिक सुख प्रादुर्भूत होते हैं तथा जिसकी समता में इन्द्र का ऐश्वर्य भी समुद्र में तिनके के समान प्रतीत होता है। स्वविवेक के परिणामस्वरूप परम विज्ञानानन्दधन परमात्मा से जो महापुरुष तद्रूप हो गया है, वह संसार-कानन में विहार करता हुआ भी सांसारिक मोह-माया में लिपायमान नहीं होता तथा उसका सर्वोत्कृष्ट मोक्षफल से सम्बन्ध जुड़ा हुआ रहता है। इसलिए हर एक कल्याणकारी साधक के लिए आवश्यक है कि वह सदैव द्रष्टाभाव से सुशोभित रहे यही उसकी साधना का फल है। जिसकी बुद्धि आत्मविषयनी, सम्यक प्रकार से ज्ञानयुक्त, तीक्ष्ण और दोषरहित है, वह संपूर्ण साधनों के बिना भी यथार्थ ज्ञान द्वारा अविनाशी परमपद को प्राप्त कर लेता है।

आत्मस्मृति रूप स्थिति को प्राप्त ज्ञानी पुरुष सदैव दृश्य रूप जड़ संसार को अनित्य और मिथ्या देखता है इसलिए स्वप्नकाल में भी अनित्य पदार्थों के प्रति कभी भी आसक्ति नहीं होती तथा जाग्रत अवस्था में भी वह इन भोग पदार्थों को काक-भिष्ठा तुल्य समझकर ग्लानि करता है। मन के रहने पर दृश्य पदार्थों के साथ सम्बन्ध होता है-ऐसा निश्चय करके जो मन से रहित होकर परम शान्ति को प्राप्त हो चुका है, वह व्यवहार काल में करता हुआ भी नहीं कर रहा है। जिसके अन्त:करण में परम शान्तिरूप शीतलता है उसके यहाँ त्याग और राग को स्थान कहाँ। इसीलिए जो ज्ञानी व्यवहार काल में उदासीन व साक्षीभाव से दृढ़ निश्चयी है वह चाहे घर में रहे या वन में, उसके लिए दोनों ही स्थितियाँ एक समान है। चित्त में जिसके कर्तापन का अभाव है, वह सबसे श्रेष्ठ समाधान है और वही मङ्गलमय परमानन्द-पद है। जो मन वासनाओं से रहित हो गया है, वह स्थिर कहा गया है। ऐसी स्थिरमना स्थिति का नाम ही समाधि है। वही केवल चिन्मयभाव है और वही अविनाशी परम शान्ति है।

जिस साधक की मन की वासनाएँ क्षीण हो चुकी हैं, वह साधक सर्वोत्कृष्ट परमपद की प्राप्ति के योग्य कहा जाता है, क्योंकि वासना-शून्य मनवाला पुरुष कर्तापन से रहित हो जाता है और जो कर्तापन से रहित है वह भोक्ता कैसे हो सकता है। अत: कर्ताभोक्ता भ्रान्ति से निवृत उस ज्ञानी पुरुष का पुनर्जन्म नहीं होता। प्रारब्ध की अवधि तक वह जीवन्मुक्ति का आनन्द लेता है और जीवनपर्यंत विदेहमुक्ति को प्राप्त हो जाता है। जिन गृहस्थों के चित्त में विषयवासनाओं का अभाव हो गया हो तथा जिनके अहंकारादि दोष शान्त हो गए हैं, उनके लिए घर ही

निर्जनस्थली के समान है। उनके लिए घर और वन एक जैसे हैं। जिसका चित्त अहंता, ममता, राग, द्वेषादि दोषरूप महामेघ से रहित होकर शान्त हो चुका है, उसके लिये जनसमूहों से व्याप्त नगर भी सुनसान अरण्य जैसे लगते हैं, परन्तु जिसका चित्त अहंता, ममता, रागादि वृत्तियों से युक्त होने के कारण उन्मत्त बना रहता है, उसके लिए निर्जन वन भी प्रचुर जनों से परिपूर्ण नगर जैसा ही है।

जिसका मन सदा अन्तर्मुख बना रहता है, वह साधक सोते, जागते, चलते हुए भी ग्राम, नगर और देश को अरण्य जैसा ही समझता है। जिन पुरुषों के अन्तःकरण में परम शान्ति प्राप्त हो जाती है, उनके लिये सारा जगत् सदा शान्तिमय हो जाता है। परन्तु जिनके अन्तःकरण में तृष्णा की ज्वालाएँ उठ रही होती हैं वहाँ शम, संतोष व शान्ति दग्ध हुए बिना कैसे टिक सकती है, यथा कभी नहीं। जो बाहर कर्मेंद्रियों द्वारा क्रियाओं का सम्पादन करते हुए भी भीतर में ब्रह्मात्मैक्य बोध से परिपूर्ण है, वह कर्तृत्वभाव के अभाव में करते हुए भी कुछ नहीं करता। उस महापुरुष की दृष्टि में करना व नहीं करना एक जैसा ही है। जो शान्तमना पुरुष सर्वव्यापक आत्मा का साक्षात्कार करते हुए न तो किसी के लिये शोक करता है और न किसी की चिन्ता ही करता है, वह वेदान्त की भाषा में समाहित कहलाता है।

जो इस प्रकार के आशय से सम्पन्न होकर सच्चिदानन्द ब्रह्मरूप परमपद को प्राप्त हो गया है, उसके ऐश्वर्य आदि पदार्थ चाहे पूर्ववत स्थित रहें, चाहे अनिष्ट को प्राप्त हों, चाहे उसके समस्त बन्धु-बान्धव मृत्यु को प्राप्त हो जाएँ अथवा वह उत्तमोत्तम भोग-सामग्रियों से परिपूर्ण तथा कुटुम्बी-जनों से भरपूर घर में रहे या सभी प्रकार के भोगों से शून्य विशाल वन में रहे। चाहे उसके शरीर पर चन्दन, अगर व कपूर का लेपन किया जाए अथवा उस पर पत्थर व धूल फेंकी जाए उन सब परिस्थितियों को वह स्थूल काय पर स्थूल क्रिया जानकर सम रहता है। अनुकूल व प्रतिकूल समस्त क्रियाएँ उसके शान्त अन्तःकरण पर कोई असर ही नहीं कर पाती है। शान्तमना उस महापुरुष की अहंता पूर्णतया शान्त हो जाने के परिणामस्वरूप चित्त में ऐसी समता प्राप्त हो जाती है, जैसे आकाश में बन रहे काले मेघों द्वारा बरसने वाली मूसलधार बारिश व कौंधने वाली बिजली न तो आकाश को गीला कर सकती है और न उस आकाश में कोई आघात या कालिमा का असर होता है।

ज्ञानीपुरुष जो कार्य करता है, जो खाता है, जो दान देता है, जो यज्ञादि अनुष्ठान करता है-उन सब कर्मो को लोकसंग्रह हेतु करते हुए भी वह भीतर में कुछ नहीं करता क्योंकि वह अहंता ममता से रहित हो जाता है, इसलिए उसका कर्म करना अथवा न करना एक जैसा ही है। उस समत्व-योगी का न तो कर्मों के करने से कोई प्रयोजन है और न कर्मों के न करने से कोई मतलब है; क्योंकि वह तो यथार्थ ज्ञान के प्रभाव से स्वाभाविक ही परमात्मा में स्थित है। ऐसे जीवनमुक्त वीतरागी महापुरुषों के चरणों में मेरा श्रद्धावत प्रणाम।

विवेकानन्द ने कहा था,-''भूखे आदमी को दर्शन का ज्ञान देना उसका अपमान है।'' यह शतशः सही है। लेकिन इससे भी आगे यह कहा जा सकता है कि रोटी देने के नाम पर उसे योजनाएँ खिलाना अपमान के साथ आघात भी है। हमारे यहाँ योजनाएँ अब तक इतनी बनी हैं, कि योजनाओं का महत्त्व ही संदेह में पड़ गया है। यदि ईश्वर की कृपा हो तो मैं अपने आपको उन व्यक्तियों से श्रेष्ठ बनाना चाहता हूँ जो योजनाएँ बनाने में सौलह वर्ष खो चुके हैं, लेकिन आर्थिक दृष्टि से स्वयं भी स्वावलम्बी नहीं बन सके।

- पू. तनसिंहजी

कुए

– संकलित

एक बार शाम के समय जब आश्रम में दीप जलाने का समय हुआ, गुरुजी के समक्ष कुछ एक शिष्य बैठे दर्शन की चर्चा कर रहे थे। एक शिष्य बोला,–''गुरुजी! दर्शन तो बहुत व्यवहारिक शब्द है–सहज...हर पल सर्वत्र है। फिर दर्शन इतना कठिन क्यों?''

गुरुजी बोले,–''पुत्र! तुम स्वयं इसकी संपूर्ण परिभाषा कर रहे हो। क्या बताऊँ? यह सर्वत्र है। हमसे दूर नहीं है.....हर पल.....हम इससे व्यवहार करते हैं। यह सर्वव्याप्त है। यही तो......जब कोई चीज सर्वव्यापक हर पल हमारे सामने होती है तो हम उसके आदतन हो जाते हैं। हम उसके अव्यक्त ज्ञान का दर्शन नहीं कर पाते। यही अव्यक्त ज्ञान दर्शन है, जो कि बहुत सूक्ष्म है। हर दृश्य में समाया हुआ है।''

औद्योगिक क्षेत्र की खटपट, शोर से दूर पहाड़ों के बीच गुरु अनामी का आश्रम है। यहाँ अधिकांश आस–पास के क्षेत्र के लोग दिन भर काम कर शाम को घर लौटते समय दो पल गुरुजी के पास होकर जाते हैं। रविवार को यहाँ बड़े–बड़े अधिकारी भी शायद सप्ताह भर की मानसिक थकान उतारने आते हैं। प्रकृति के खुले आँगन में दिन भर यहीं रहते हैं। सुबह ध्यान की कक्षा–फिर योग की कक्षा–सरोवर पर स्नान–कीर्तन–सत्संग–विचार–विमर्श आदि में सम्मिलित होते हैं। अधिकारीगण बिल्कुल खुले दिमाग से यहाँ आते हैं, गुरुदेव की ओर से भण्डारा भी होता है, सेवा, खाना, सभी कुछ और फिर दोपहर को चर्चाएँ होती हैं। इसे शास्त्रार्य कहें तो अच्छा होगा, खैर। आज गुरु जी ऋषिकेश का वर्णन करते हुए रूद्र प्रयाग का धार्मिक, भौगोलिक महिमा बताते हुए गंगोत्री तक की यात्रा सभी शिष्यों को शब्दों के द्वारा करा रहे थे कि इस शब्द यात्रा से विभोर हुआ एक व्यक्ति बोला,–''गुरुजी, अबकी बार गंगोत्री, यमनोत्री जी की यात्रा करवा ही दीजिए। आपके साथ ना केवल दर्शन हो जाएँगे, बल्कि हर चीज का महत्त्व भी सजीव हो जाएगा।'' और गंगोत्री यात्रा का कार्यक्रम बनने लगा।

''गुरुजी! आप हमेशा कहते हैं कि ईश्वर, उसकी शक्ति कण–कण में व्यापत है, वो घट–घट में है, आप में, मुझे में भी ईश्वर है, गंगा तो यहीं पर बह रही है, फिर क्यों गंगोत्री–जमनोत्री जाएँ और 15 दिन लगाएँ। यदि यह दैवीय है, ईश्वर का प्रसाद है, तो क्या शिव राजस्थान की मरुभूमि में नहीं हैं?''

एक दम सभा में सन्नाटा हो गया। कोई सोच रहा था कि यदि इन श्रीमान को नहीं जाना है, तो न जायें, यह क्या बात हुई कि कुतर्क कर रहे हैं....आदि।

कुद क्षण बाद फिर वह व्यक्ति बोला,–''गुरुजी! एक जिज्ञासा थी......आपने जवाब नहीं दिया।'' गुरुजी बोले,–''मिलेगा वत्स, जवाब भी मिलेगा।'' गुरुजी बोले,–''तुम क्यों हर साल 15–20 दिन के लिए हरिद्वार में आकर यहाँ ठहरते हो? गंगा तो तुम्हारे गाँव के पास से भी गुजरती है। वहाँ गंगा आरती यहाँ जैसी होती है, वैसी क्यों नहीं होती? इस घाट पर ही यह सब क्यों?

''यही तो जानना चाहता हूँ। क्यों हम उसी गंगा को हरिद्वार जैसा नहीं पाते। गंगोत्री जाने की ही चाह रखते हैं।''

''जमीन में पानी तो हर जगह है ना?''

''जी गुरुदेव!'

''फिर तो हमें जब प्यास लगे, जमीन का पानी मिल ही जाएगा, तो हमें कुए, तालाब, बावड़ी खोदने की क्या जरूरत है?''

यह प्रश्न सभी को छू गया। थोड़ी सी काना–फूसी मच गई। कुछ लोग एक साथ बोले,–''यह कैसे सम्भव है गुरुदेव! जब हमें प्यास लगेगी, तब कब तो कुआ खुदेगा और कब तो पानी निकलेगा और कब उसे पीकर हम प्यास बुझायेंगे।''

''यही वत्स! यही तो सत्य है। पृथ्वी में सर्वव्याप्त

के बावजूद जहाँ वो प्रकट है या प्रकट कर लिया गया है, आप वहीं तो प्यास बुझा पाते हैं। इसी तरह ईश्वर, जो सूक्ष्मशक्ति है, घट-घट में व्याप्त है, ये तीर्थ स्थल कुए, जलाशय की भाँति इस सूक्ष्म शक्ति का प्रकट स्थान है। जहाँ किसी महान् आत्मा के तप से, श्रम से, उसकी त्रिकालदर्शी सोच से ये सूक्ष्म-शक्ति, इन स्थानों पर प्रकट हुई और प्रकृति के विराट आंचल में समा गई। जहाँ कालान्तर के बाद आज भी जब हमें अपनी आत्मशक्ति की जरूरत होती है, तो हम इन स्थलों पर जहाँ आदमी की आत्मा यानी सूक्ष्म-शक्ति विराट प्रकृति की सूक्ष्म-शक्ति में एक हो गई, इन दिव्य स्थलों पर जो वास्तव में आत्मा-परमात्मा की शक्तियों का मिलन-स्थल है, वहाँ जाकर जब हमें जरूरत होती है, हमें अपनी विलीन आत्मशक्ति प्राप्त होती है। दूसरे शब्दों में, हमारी इच्छा-शक्ति को यहाँ आत्मशक्ति मिल जाती है और हमें प्यास लगने पर कुआ खोदने की जरूरत नहीं होती, बल्कि ये दिव्य प्रकट स्थल से हमें अभीष्ट मिल जाता है और जो हमारे जीवन को सुगम बनाता है।''

सब एकदम मौन हो गए। आज प्रकृति में छुपी आध्यात्मिक शक्ति के संपूर्ण दर्शन हो गये। इसी कारण इन विशेष स्थलों पर मनौतियाँ की जाती हैं।

✲

पृष्ठ 5 का शेष

चलता रहे मेरा संघ

आलोचना वे करते हैं, जिनके पास करने को कोई काम नहीं। जो निष्क्रिय हैं उन्होंने आलोचना करने को ही काम मान रखा है। संघ में इतना काम है कि पूरा हो ही नहीं पाता। जिसके पास काम है, वह भाग्यवान है। संघ की चाह है कि आपके पास समाज का इतना बड़ा काम, क्षात्र संस्कार निर्माण का काम पड़ा है, उसे पूरी कर्मठता से करते रहें।

इन शिविर के दिनों में यह समझाया और करवाने का प्रयास किया गया कि दूसरों की तरफ देखना छोड़ दो और अपनी ओर देखो। हमारे स्वयं में गन्दगी ने जड़ें जमा रखी हैं जिन्हें उखाड़ फेंकने के लिए जीवन भर प्रयास करने की आवश्यकता है।

क्षत्रिय का जीवन अपने लिए नहीं, अन्यों के लिए है। यह नई बात आपने यहाँ सुनी। आज सभी जब खाने, पीने में मस्त हैं, भोगों की तरफ बेतहाशा दौड़ रहे हैं तब संघ यह विपरीत बात कह रहा है। संघ भूखे मरने की बात नहीं कह रहा, संसार के दायित्वों, आकांक्षाओं को रखें, पर इन्सानियत की कीमत पर नहीं। भोगों में न उलझकर कर्तव्य पालन में तत्परता बनाई रखें, यह संघ की चाह है।

अब विदा के समय कष्ट इस बात का है कि जो बीज यहाँ अंकुरित हुआ है वह बाहर के वातावरण में जाने से सुरक्षित रह सकेगा या नहीं, भरोसा नहीं है। यह जो पौध पनपी है, इसकी रक्षा आपको करनी है। अब बाहर जाकर आप यदि सावधान नहीं रहे तो भय है उस अंकुर के नष्ट होने का। जो शिक्षण यहाँ से लेकर जा रहे हैं, उसकी सुरक्षा का दायित्व भी आपका ही है। यहाँ सनाथ थे, अब शिक्षण पाने के रूप में अनाथ हो जाएँगे। बाहर जाकर कोई मरेगा तो नहीं पर, यहाँ जैसी आत्मीयता से बाहर कौन संभालेगा? आपको ही संभालना है। अंकुरित हुआ यह पौधा मुरझाया नजर आए तो पुन: यहीं, संघ में आना, पौधे के लिए खाद पानी पाने के लिए।

समाज ने सात दिनों के लिए हमारे लिए व्यवस्था की है। इस समाज से हमने कितना कुछ लिया है, इस बात को कभी भूलें नहीं। जो इस बात को याद रखेगा वह इन्सान बनेगा। इन्सानियत होगी तभी क्षत्रियत्व पनपेगा।

यह संघ का दिव्य जीवन दूर न जाए इसका ध्यान रखें। श्री क्षत्रिय युवक संघ आपकी बाट जोहता रहेगा। यहाँ से अब हम चले जाएंगे पर सशर्त विदा दी जा रही है, यह याद रखें। आपका स्वागत करने के लिए अंगुलियाँ तरसती रहेंगी। आप भी इस बात को स्मरण रखें तो आपका जीवन फलदायी बनेगा।

धारावाहिक

चित्रकथा–'लोकदेवता बाबा रामदेव जी'

– बृजराजसिंह खरेड़ा

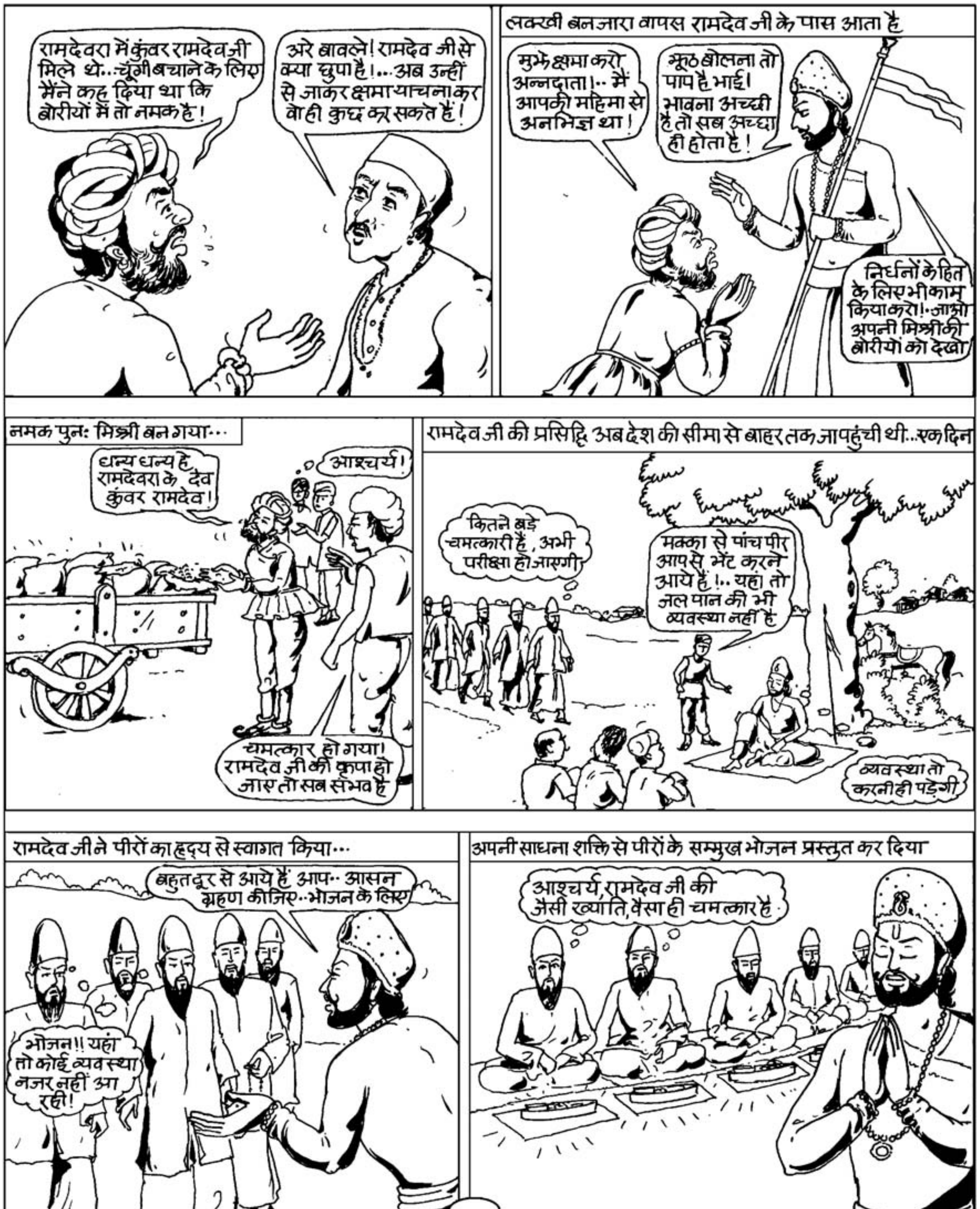
रामदेवरा में कुंवर रामदेव जी मिले थे...चूंगी बचाने के लिए मैंने कह दिया था कि बोरीयों में तो नमक है!
अरे बावले! रामदेव जी से क्या छुपा है।...अब उन्हीं से जाकर क्षमा याचना कर वो ही कुछ कर सकते हैं!
लक्खी बनजारा वापस रामदेव जी के पास आता है
मुझे क्षमा करो अन्नदाता।.. मैं आपकी महिमा से अनभिज्ञ था!
झूठ बोलना तो पाप है भाई! भावना अच्छी है तो सब अच्छा ही होता है!
निर्धनों के हित के लिए भी काम किया करो!..जाओ अपनी मिश्री की बोरीयों को देखो
नमक पुनः मिश्री बन गया...
धन्य धन्य है रामदेवरा के देव कुंवर रामदेव!
आश्चर्य!
चमत्कार हो गया! रामदेव जी की कृपा हो जाए तो सब संभव है
रामदेव जी की प्रसिद्धि अब देश की सीमा से बाहर तक जा पहुंची थी...एक दिन
कितने बड़े चमत्कारी हैं, अभी परीक्षा हो जाएगी
मक्का से पांच पीर आप से भेंट करने आये हैं!.. यहां तो जल पान की भी व्यवस्था नहीं है
व्यवस्था तो करनी ही पड़ेगी
रामदेव जी ने पीरों का हृदय से स्वागत किया...
बहुत दूर से आये हैं आप.. आसन ग्रहण कीजिए..भोजन के लिए
भोजन!! यहां तो कोई व्यवस्था नजर नहीं आ रही!
अपनी साधना शक्ति से पीरों के सम्मुख भोजन प्रस्तुत कर दिया
आश्चर्य, रामदेव जी की जैसी ख्याति, वैसा ही चमत्कार है

पति का पत्नी के नाम पत्र

अब से लगभग 59 वर्ष पूर्व श्री क्षत्रिय युवक संघ के एक नव-विवाहित स्वयंसेवक का अपनी नई-नवेली पत्नी को लिखा गया पत्र। मूलपत्र राजस्थानी में है। यहाँ प्रस्तुत है उसका हिन्दी अनुवाद। यह पत्र पथ प्रेरक में पूर्व में छप चुका है, पर पाठक की माँग पर पुन: छापा जा रहा है।

10.11.1961

प्रिय शेखावत सा.

सप्रेम मिलन

माँ भगवती की कृपा और आपकी शुभकामनाओं से मैं यहाँ कुशलपूर्वक हूँ। आपको माँ भगवती सदा सुखी रखे। बहुत दिनों से मैं विचार कर रहा था कि आपको पत्र लिखूं, परन्तु प्रथम पत्र में क्या लिखूं? बहुत सोचने के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि मैं अपने प्रथम पत्र में ही आपको अपनी भावनाओं से अवगत करा दूं। ताकि इसी रास्ते पर हम एक साथ आगे चलें तो जिन्दगी की गाड़ी के दोनों पहिए सदा सबल बने रहें और गाड़ी सुचारू रूप से चलती रहे। इसीलिए आज मेरे पहले पत्र में मैं आपको अपनी भावना बता रहा हूँ।

शेखावत सा! भगवान ने शादी-ब्याह के ये सम्बन्ध कई कारणों से बनाए हैं। परन्तु इन अनेक कारणों में से एक कारण जो मुझे सबसे ज्यादा समझ में आया है, वह मैं आपको लिख रहा हूँ। इस संसार में आदमी जब जन्म लेता है, तब वह बहुतों का कर्जदार होता है। माता-पिता के अलावा गुरु, भाई-बहिन, परिवार और समाज का कर्जा तो होता ही है, परन्तु इन सबमें माता-पिता के कर्ज को मैं सबसे बड़ा और ज्यादा कर्ज मानता हूँ। यह कर्जा व्यक्ति अकेला नहीं उतार सकता। क्योंकि परिवार के पालन-पोषण के लिये उसे घर छोड़कर बाहर आना जाना पड़ता है। ऐसी स्थिति में पुत्रवधु माता-पिता की सेवा करके व्यक्ति पर माता-पिता के कर्ज को कुछ हल्का करने में मददगार होती है। मैं भी आपसे यही आशा करता हूँ कि आप मेरे देव तुल्य माता-पिता की सेवा करते हुए उनके मुझ पर कर्ज भार को हल्का करने की पूरी कोशिश करोगी।

शेखावत सा! मेरे हिसाब से मेरे पास एक तराजू है। मेरे इस तराजू के एक पलड़े में आप सहित सारा संसार बैठा है और दूसरे पलड़े में मेरे माता-पिता विराजमान हैं। मेरे लिए माता-पिता वाला पलड़ा हमेशा भारी रहेगा। जिस दिन इन दोनों के सौ वर्ष पूरे हो जाएँगे उस दिन मेरी तराजू के एक पलड़े में आप और दूसरे में सारा संसार होगा। परन्तु मेरे लिए आप वाला पलड़ा भारी होगा। इसलिए आप अगर मेरी इस भावना की कद्र करोगी तो मैं आपसे हजार कोस दूर रहते हुए भी हमेशा आपके बिल्कुल पास में लगूंगा। किन्तु अगर मेरी इस भावना की कद्र न करके मेरा साथ नहीं दोगी तो बिल्कुल पास रहते हुए भी मेरे और आपके बीच सात पहाड़ों की दूरी बनी रहेगी-इस बात को आप समझोगी।

मैं आशा करता हूँ कि मेरे इस पत्र को पढ़कर मेरे जीवन की गाड़ी के दूसरे पहिए को आप सदा सबल बनाए रखेंगी। हेत, हिचकी और ओळूं (यादों) की बातें मैं मेरे इस पत्र का जवाब आने के बाद लिखूंगा। आपके पत्र की प्रतीक्षा में युग-युग से सदा आपका ही –

✻ ✻ ✻

जब कभी हम लड़के या लड़की के सम्बन्ध के बारे में लोगों की बातें सुनते हैं तो बड़ी अजीब-अजीब माँगें सुनते हैं और अजीब-अजीब माँगें करते भी हैं। जिनमें लड़की इतनी पढ़ी-लिखी हो, ऊँचाई इतनी हो, पैसा इतना हो, सोना इतना हो, इसके सिवाय न तो खानदान की पैठ देखते हैं, न लड़की के गुण देखते हैं और न ही पारिवारिक पृष्ठभूमि, वातावरण पर ध्यान देते हैं।

परन्तु फिर माँग करने वाले की पाँच छ: वर्ष बाद या बुढ़ापे में हालत बड़ी दयनीय होती है और सिवाय अपने बहुओं और बच्चों की शिकायत के अलावा उनके पास कुछ नहीं बचता। मगर उस समय तक कहानी बीत चुकी होती है। इसी स्थिति के बढ़ते-बढ़ते प्रौढ़ आश्रमों में जाने के सिवाय कोई चारा नहीं बचता। तब उस समय की माँग पर जो ढकोसला के सिवाय कुछ नहीं होती है, रोना आता है।

उपरोक्त परिस्थिति को देखते हुए जब मेरे द्वारा लिखा एक पत्र जो बहुत पुराना था पुराने रेकार्ड को टटोलते हुए मुझे मिला तब मुझसे आप लोगों के समक्ष उसे रखे बिना नहीं रहा गया। शायद यह पत्र गलत हो सकता है परन्तु इसकी जरूरत है और रहेगी। इस पत्र पर अगर आप गौर करेंगे तो न आपको बुढ़ापे से डरना पड़ेगा और न ही आने वाली पीढ़ी को क्योंकि जैसी कहावत है कि जैसा आपने बुजुर्गों के साथ सलूक किया वैसा ही आपके बच्चे आपके साथ करेंगे।

– एक साथी

अपनी बात

साधारणतया जानकारियाँ अपने स्मृति पटल पर अंकित करने को ज्ञान मान लिया जाता है। जो ज्यादा जानकारियाँ रखता है वह बड़ा ज्ञानी है, ऐसा आम जन मानता है। ऐसी जानकारियों का ज्ञाता भी अपने आपको ज्ञानी मान लेता है। ऐसा तथाकथित ज्ञान परमात्मा की दिशा में बढने में सबसे बड़ी बाधा है, क्योंकि जिस मनुष्य को यह ख्याल पैदा हो जाता है कि मैं जानता हूँ, उसके जानने के द्वार बन्द हो जाते हैं। उसके आगे की खोज भी बन्द हो जाती है। वह ठहर जाता है, रुक जाता है। वह फिर सत्य को नहीं जान पाता। यह ख्याल पैदा हो जाना कि मैं जानता हूँ, इससे बड़ा और कोई दम्भ नहीं है। वास्तव में जो ज्ञानी है, वह तो मानता है-मैं तो अभी कुछ भी नहीं जानता।

कुछ लोगों ने आकर सुकरात से पूछा-एथेन्स के लोग कहते हैं, सुकरात महाज्ञानी है, परम ज्ञानी है। क्या यह सच है? सुकरात ने कहा,-जब मैं छोटा था और जब मुझे जीवन का कोई अनुभव नहीं था और जब मैंने जीवन को जाना नहीं था और जीवन से परिचित नहीं हुआ था तब मुझे भी यह भ्रम था कि मैं जानता हूँ। फिर मैं युवा हुआ, जीवन की बहुत ठोकरें मैने खाई और जीवन के बहुत अंधेरे रास्तों पर मैं भटका, तब धीरे-धीरे मुझे पता चला कि मैं कितना कम जानता हूँ। लेकिन तब भी मुझे यह ख्याल बना रहा कि थोड़ा बहुत मैं जानता हूँ। फिर मैं बूढा हुआ और अनुभव की वर्षा मेरे ऊपर हुई, और नए-नए अनजान, अपरिचित तथ्य मेरी आँखों में उभरे और धीरे-धीरे मेरे ज्ञान का भवन गिरता गया। अब जब कि मैं मरने के करीब पहुँच गया हूँ, मैं अत्यन्त स्पष्ट रूप से कह देना चाहता हूँ कि मुझसे अज्ञानी शायद ही कोई हो। उसने कहा-मैं कुछ भी नहीं जानता हूँ और जाओ एथेन्स के मेरे लोगों को कह देना कि वे ये भूल भरी बातें किसी को न बताएँ। वे मुझे प्यार करते हैं, यह तो ठीक है। लेकिन यह न कहें कि मैं परम ज्ञानी हूँ।

वे लोग वापस गये और उन्होंने एथेन्स के समझदार लोगों को कहा कि तुम तो कहते हो, सुकरात परम ज्ञानी है, लेकिन उसने खुद कहा है कि मैं तो परम अज्ञानी हूँ। और उसने कहा है जाओ और उनसे कह देना कि झूठ बात वे न कहें। वे एथेन्स के वृद्धजन हँसने लगे और उन्होंने कहा, जो अपने को परम अज्ञानी कहता है उसी के लिए परम ज्ञान के द्वार खुल जाते हैं। इसीलिए तो हम कहते हैं कि सुकरात परम ज्ञानी है।

जो इस तथ्य को जानने में समर्थ हो गया है कि मैं कुछ भी नहीं जानता उसका हृदय एकदम सरल और शान्त हो जाता है। उसके हृदय की सारी जटिलता विलीन हो जाती है। उसका अहंकार शून्य हो जाता है। वह एक अर्थों में मिट जाता है। उसके मन में तब कोई ख्याल और विचार नहीं रह जाते हैं। तब कोई सिद्धान्त और शास्त्र नहीं रह जाते हैं। तब उसके भीतर कोई दावा नहीं रह जाता है कि मैं जो कहता हूँ वही सत्य है और दूसरे जो कहते हैं वह गलत है। तब वह कोई विवाद नहीं करता, तब वह कोई तर्क नहीं करता, बल्कि इस शान्त अवस्था में कि मैं नहीं जानता हूँ, उसका मन मौन हो जाता है। उसी मौन में वह जान पाता है। जानने की दशा है और न जानने की दशा है। दो अवस्थाएँ हैं-एक चित्त की अवस्था है जब हमें लगता है कि हम जानते हैं। लेकिन हम क्या जानते हैं? आदमी क्या जानता है? कौनसा ज्ञान है आदमी के पास? विश्व की सत्ता के सम्बन्ध में कौनसी समझ है हमारे पास? दूर रही विश्व की सत्ता हम स्वयं हमारे बारे में भी क्या जानते हैं? क्यों होता है जन्म, क्यों होती है मृत्यु, क्यों चलती है श्वास, क्यों बन्द हो जाती हैं, क्या जानते हैं? क्या हैं हम? हमारे होने की अर्थवत्ता और प्रयोजन क्या है?

अपने सम्बन्ध में भी जो मनुष्य कुछ नहीं जानता, वह भी यह ख्याल करता है कि मैं ईश्वर के सम्बन्ध में जानता हूँ। वह दावा करता है कि मोक्ष के सम्बन्ध में मैं

जानता हूँ। स्वर्ग और नरक के सम्बन्ध में मैं जानता हूँ। न केवल वह दावा करता है कि मैं जानता हूँ, बल्कि यह भी दावा करता है कि दूसरे जो जानते हैं वह गलत है। जो मैं जानता हूँ, वही सही है। जीवन के बाबत कुछ भी ज्ञात नहीं है, लेकिन उस अज्ञात सत्य के सम्बन्ध में भी हम कल्पनाएँ कर लेते हैं और कल्पनाओं पर लड़ते हैं।

यह जो जानने का भ्रम है, जब तक न छूट जाए तब तक जानने के द्वार खुलते ही नहीं। ज्ञान के द्वार केवल उसी के लिए खुलते हैं जो उस द्वार पर बिल्कुल अज्ञानी की भाँति खड़ा हो जाता है। और जो कहता है, मैं तो कुछ भी नहीं जानता हूँ। मुझे तो कुछ भी पता नहीं। मुझे तो जीवन के अ ब स का भी कोई अनुभव नहीं है। मैं तो निपट न जानने वाला हूँ। जिसको कभी ऐसा ख्याल आया है, उसके जीवन में धर्म की शुरुआत की संभावना है। यदि ख्याल यह आता है कि मैं तो जानता हूँ तो उसके द्वार बन्द हो गए हैं। उसकी भूमि तैयार नहीं है। केवल कुछ शास्त्र पढ लिए तो मात्र शब्दों से क्या जानना है। कुछ शब्द सीख लिए, कुछ सूत्र रट लिए, उस पर बोलने में समर्थ हो गए, इससे क्या ज्ञान उपलब्ध हो गया। यदि ऐसा होता तो सारी दुनिया ज्ञानी हो गई होती। जानकारी व्यक्ति की बढती जाती है पर भीतर तो अज्ञान ही बढ रहा है। यह जानने के भ्रम से हो रहा है। उसी से आदमी जटिल और कठोर होता जाता है। सरलता, विनम्रता सब खोती चली जाती है। शास्त्र पढ लेने से, शब्द सीख लेने से, सिद्धान्तों को स्मरण कर लेने से ज्ञान उत्पन्न नहीं होता। केवल अज्ञान ढक जाता है। जैसे कोई अपने फोड़े को फूलों से ढक ले तो क्या फोड़ा समाप्त हो जाएगा? जैसे कोई अपने रुग्ण शरीर को सुन्दर-सुन्दर वस्त्रों से ढांक ले तो क्या शरीर स्वस्थ हो जाएगा? नहीं, बल्कि उसके स्वस्थ होने की संभावनाएँ थी, वे भी समाप्त हो जाएंगी। क्योंकि न केवल दूसरों को धोखा पैदा होगा कि वह आदमी स्वस्थ है, दूसरे का धोखा देखकर उसे खुद भी धोखा पैदा होगा कि मैं स्वस्थ हूँ। एकआदमी अपने फोड़े को छिपा ले, दूसरों को दिखाई पड़ना बन्द हो जाएगा कि उसके फोड़ा नहीं है। दूसरों को देखकर उसको खुद को यह भ्रम पैदा होना शुरू हो जाएगा कि शायद मेरा फोड़ा मिट गया, क्योंकि कोई उसकी चर्चा नहीं करता है। तब फोड़ा भीतर-भीतर बढेगा और सारे प्राणों पर छाएगा।

हम अपने अज्ञान को छिपा लेते हैं शब्दों और शास्त्रों की सीख से, सिखावन से। उससे अज्ञान मिटता नहीं, भीतर सुलगता रहता है, फैलता रहता है और इसीलिए तो हमारा ज्ञान एक तरफा होता है। जीवन दूसरी तरफ होता है। क्योंकि यह ज्ञान ऊपर का होता है, जीवन भीतर का होता है। इसलिए रोज झंझट खड़ी रहती है। रोज हम सोचते हैं कि मैं जानता हूँ कि ठीक क्या है, लेकिन जब करने का सवाल उठता है तो कर वह लेता हूँ जो गलत है। यही दुर्योधन की स्थिति थी। वह भी कहता था कि मैं जानता हूँ कि सही क्या है, पर वैसा कर नहीं पाता हूँ। अगर कोई आदमी वास्तव में जानता है कि ठीक क्या है तो क्या यह सम्भव है कि वह गलत कर सके? नहीं, यह असम्भव है। जो ठीक को जानता है वह गलत को नहीं कर सकता। लेकिन कोई ठीक को जानता है और गलत को करता है, यह किस बात की सूचना है?

यह इस बात की सूचना है कि हमारा जानना धोखे का है, झूठा है। शब्दों का है, सत्य का नहीं। हम संघ को जानते हैं। जो संघ में बताया जाता है उसे स्मृति में ले आए हैं, क्या यही जानना है। यदि इसी को जानना मानते रहेंगे तो निश्चित रूप से संघ को कभी नहीं जान पाएंगे। लेकिन जो कहा गया, उसे हमने अपने जीवन में उतार लिया तो स्मृति में नहीं अब जीवन में आ गया है, वही संघ को जानने की दिशा है। जीवन में कोई एक बात उतार ली गई, उससे संघ को जान लिया यह भ्रम भी भटकाएगा। संघ तो जीवन भर सीखकर जीवन में उतरते जाने की बात है। इसलिए सदैव यह भाव बना रहे कि मैं संघ को नहीं जान पाया हूँ, तो संघ के ज्ञान का द्वार हमारे लिये खुला रहेगा।

हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएँ

श्री क्षत्रिय युवक संघ के
स्वयंसेवक एवं हमारे सहयोगी

श्री भवानीसिंह मुंगेरिया

के पुलिस निरीक्षक से पुलिस उपाधीक्षक
के रूप में पदोन्नत होने पर
हार्दिक बधाई एवं
उज्ज्वल भविष्य की शुभकामनाएं।

-: शुभेच्छु :-

सहयोगीगण जालोर, सिरोही, पाली

हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएँ

क्षत्रिय युवक संघ के स्वयंसेवक करण सिंह पदुसमा और 70 अन्य राजपूत पुलिस उप-निरीक्षकों को बधाई। जिनके साथ पुलिस इंस्पेक्टर और 98 राजपूत भाइयों को पदोन्नति मिली, जिन्होंने 2018 में पुलिस उप-निरीक्षक की विभागीय परीक्षा उत्तीर्ण की और अपने भविष्य के करियर के लिए उन्हें शुभकामनाएं दी ।

नवम्बर, सन् 2020
वर्ष : 57, अंक : 11

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60
डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City /411/2020-22

संघशक्ति
ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा,
जयपुर-302012
दूरभाष : 0141-2466353
E-mail : sanghshakti@gmail.com
Website : www.shrikys.org

श्रीमान् ....

....

....

स्वत्वाधिकारी श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास के लिये, मुद्रक व प्रकाशक, लक्ष्मणसिंह द्वारा ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर से : गजेन्द्र प्रिन्टर्स, जैन मन्दिर सांगाकान, सांगो का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर फोन : 2313462 में मुद्रित। सम्पादक-लक्ष्मणसिंह